१० मई, १९५७

मूल्य
५० नये पैसे

संकलनकर्त्ता
श्री विद्यानिवास मिश्र

मुद्रक
प० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

भूमिका

प्रस्तुत सग्रह में चुनी हुई राष्ट्रीय कविताओ का सकलन किया गया है। भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन की शतवार्षिकी के अवसर पर इन सभी गूंजो और अनुगूंजो की याद आनी स्वाभाविक है, जिनसे आन्दोलन, उत्पीडन और सघर्षो के पिछले वर्ष मुखरित और गुजित होते रहे है। इस दृष्टि से इस सग्रह का महत्त्व ऐतिहासिक है।

इस सग्रह से हमारे देश की दो पीढियो के हृदय की धडकनो का सम्बन्ध है। एक उसका जिसने ऊँचे स्वर से इन गीतो को गाया है और दूसरी वह जो इसे अपनी प्रेरणा के मूल स्रोत के रूप में ग्रहण करेगी। हम इन दोनो पीढियो के बीच मे खडे लोग इस सत्य का अनुभव सबसे अच्छी तरह कर सकते है।

हिन्दी भाषा सदैव ही से जन-साधारण की भाषा रही है इसलिए जन-आन्दोलन का जितना सही और प्राणप्रद प्रतिनिधित्व इस भाषा और साहित्य के माध्यम से हुआ है उतना सम्भवत और भाषाओ के माध्यम से नही हुआ है। १८५७ तथा उसके बाद इस देश की जनता देश की मुक्ति के लिए अविश्रात सघर्ष करती रही है। इन सभी आन्दोलनो की छाया हिन्दी-साहित्य पर देखी जा सकती है। यह इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी के कवि स्वतंत्रता की भावना से निरन्तर अनुप्राणित होते रहे है। भारतेन्दु से लेकर आज तक के हिन्दी के साहित्यकारो की चुनी हुई इन कविताओ के देखने से हमारे साहित्य की स्वस्थ परम्पराओ का आभास बडी ही स्पष्टता से होता है।

इन गीतो को जनता ने पूजा के गीतो की तरह श्रद्धा से गाया है, श्रद्धा ही इन गीतो का सबसे बडा मूल्य होगा। हम भी इन गीतो को इसी श्रद्धा के साथ स्वीकार करेंगे।

भगवतीशरण

विषय-सूची

	विषय	पृ० स०
१	भारत-भूमि	७
२	देश-गीत	८
३	भारतोत्थान	९
४	सुसदेश	१०
५	आरती	११
६	वीर की कामना	१२
७	अत्याचारी से	१२
८	रण-विदा	१३
९	कडखा	१४
१०	लगन	१५
११	वे	१६
१२	हे वीर वर	१७
१३	अभिलाषा	१८
१४	मोती	१८
१५	भारत जननी	१९
१६	भारत दुर्दशा	२२
१७	महाराष्ट्र भूमि	२५
१८	तुकी कमान	२६
१९	आहिताग्निका	२९
२०.	राष्ट्रीय गान	३१
२१	भारत माता और योरोप रमणी का परस्पर आलाप	३३
२२	भारत-स्तव .	३६
२३	वन्दे मातरम् का पद्यात्मक छाया अनुवाद .	४२
२४	स्वदेशी कजली	४३
२५	श्रीयुत लाजपतराय	४४
२६	वीर बन्धु .	४६
२७	दासता .	४८
२८	कष्ट	५०
२९	भारत माता	५३
३०	भारत माता	५४
३१	वह देश कौन सा है ?	५५
३२	झण्डा-वन्दना	५७
३३	जय राष्ट्रीय निशान	५८
३४	कौमी गीत	५९
३५	एकता गीत .	६०
३६	वन्दना के इन स्वरों में	६१
३७	स्वतन्त्रता	६२
३८	सच्चा साधु	६५
३९	त्राहि त्राहि शिव	६६
४०	मानव	६८
४१	भारत विलाप	६९
४२	शिव भारत	७१
४३	मातृ-वन्दना	७२

	विषय	पृ० स०
४४	हिन्द-वन्दना	७३
४५	वीर बालक	७५
४६	मातृ-भूमि	८४
४७	प्रभात-फेरी	८५
४८	उद्बोधन	८६
४९	स्वतत्र देश के नवयुवक	८८
५०	विप्लव गान	९०
५१	नया ससार	९१
५२	देश से आनेवाले बता	९३
५३	कुसुम की चाह	९५
५४	कौमी परवाने	९६
५५	चलो चलो	९७
५६	झांसी वाली रानी	९८
५७	राष्ट्रीय गान	१०१
५८	मातृभापा-महत्व	१०२
५९	प्रण लो	१०३
६०	जापान के प्रति भारत भूमि	१०५
६१	तिलक-स्वर्गारोहण	१०९
६२	वही वीर है	११२
६३	गणतन्त्र स्वागत	११४
६४	पथिक से	११५
६५	स्वतत्रता के दीवाने	११७

भारत-भूमि

(भारत-गीत—कार्तिक शुक्ल १२ सं० १९७५)

जय जय भारत - भूमि हमारी ।

१

जय जय रंजिनि, जय अघ - गंजिनि
सम्पति-सुमति - सुकृत सुख - पुंजिनि
बुध-जन - हृदय - सरोवर - कंजिनि
सकल सुकर्मन की महतारी
जय जय भारत - भूमि हमारी ।

२

जय हिम शृंगा, सुर-सरि गंगा
साधु - समाज सुजन - सतसंगा
जय जग - क्लेश - प्रनाश - प्रसंगा
सुमिरत भरत मोद मन भारी
जय जय भारत - भूमि हमारी ।

३

जय भुवि - थविनि, सिंधु - नितंबिनि
त्रिभुवन - प्रेयसि, प्रेम - प्रलंबिनि
जयति जननि निज जन - अवलंबिनि
जय तुअ सुअन तपोबल-धारी
जय जय भारत - भूमि हमारी ।

४

जय अति सुंदरि, जय सुख - कंदरि
सती स्वधर्म - अतीव - अतंदरि
जगत-जोति, जग - सृष्टि - धुरंधरि
श्रीधर प्रनत प्रान बलिहारी
जय जय भारत - भूमि हमारी ।

श्रीधर पाठक

देश-गीत

(भारत-गीत—कार्तिक शुक्ल १५ स० १९७४)

जय जय प्यारा भारत देश।

१

जय जय प्यारा, जग से न्यारा
शोभित सारा, देश हमारा
जगत - मुकुट, जगदीश - दुलारा
जग - सौभाग्य, सुदेश
जय जय प्यारा भारत - देश।

२

प्यारा देश, जय देशेश
अजय अशेप, सदय विशेष
जहाँ न सभव अघ का लेश
सभव केवल पुण्य - प्रवेश
जय जय प्यारा भारत - देश।

३

स्वर्गिक शीश - फूल पृथिवी का
प्रेम - मूल, प्रिय लोकनयी का
सुललित प्रकृति - नटी का टीका
ज्यो निशि का राकेश
जय जय प्यारा भारत - देश।

४

जय जय शुभ्र हिमाचल - शृगा
कल-रव-निरत कलोलिनि गगा
भानु प्रताप चमत्कृत अगा
तेज - पुज तप - वेश
जय जय प्यारा भारत - देश।

५

जय में कोटि - कोटि जुग जीवें
जीवन - सुलभ अमी - रस पीवें
सुखद वितान सुकृत का सीवें
रहै स्वतन्त्र हमेश
जय जय प्यारा भारत - देश।

श्रीधर पाठक

भारतोत्थान

(भारत-गीत—माघ कृष्ण ७, १९३६)

भारत, चेतहु नींद निवारौ
बीती निशा उदित भए दिन - मनि, कबकौ भयौ सकारौ
निरखहु यह शोभा - प्रभात वर, प्रभा भानु की अद्भुत
किहि प्रकार क्रीडा-कलोल-मय विहग करहिं प्रात-स्तुत
बिनस्यौ तम-परिताप पाप सँग नभ नखत्र बिलगाने
निशिचर खग भूचर तजि तजि सब भ्रमन मये इक आने
बिकसे कुमुद, मधुर - मारुत - मद - सने भौंर गुंजारत
बाला, नवल - कमल-कोमल-वपु, उठि निज केश सँवारत
लगे सबै निज काज परस्पर प्रेम - पाग - रस चाखन
देखौ वरति रह्यो आनँद-सुख, उठौ खोलि दोउ आँखन
गहरी नींद परे मति सोवहु, बात हमारी मानहु
"सोय खोय जागत पावत" जग कहत सत्य अनुमानहु।

श्रीधर पाठक

सुसंदेश

(भारत-गीत—१४-११-१९१९)

अहो छात्र - वर - वृन्द, नव्य-भारत-सुत, प्यारे
मातृ - गर्व - सर्वस्व, मोद - प्रद, गोद - दुलारे
अहो भव्य भारत भविष्य निशि के उजियारे
शुभ आशा विश्वास व्योम के रवि, विधु, तारे
गृह-जीवन-नव-ज्योति, प्रेम के प्रकृत स्रोत तुम
विनय-शील-उद्योत, जगत के सुकृत-स्रोत तुम
मातृ-भूमि के प्राण, मातृ-सुख-सप्रदान तुम
मातृ-सत्त्व-सत्राण-कुशल, भुज-बल-निधान तुम
आर्य-वश-अक्षय-वट के अभिनव प्रवाल तुम
आर्य-सत-जीवन-पट के सुठि ततु-जाल तुम
आर्य-वर्ण-आश्रम-उपवन के फल रसाल तुम
आर्य-कीर्ति-तत्री-गुण के स्वर, शब्द, ताल तुम
निज-सुजन्म-सतति-सरोज-वन के मृणाल तुम
मानव-कुल-मानस - ह्रद के मजुल मराल तुम
जग-सुकृत्य - रत भारत के सौभाग्य - भाल तुम
प्रिय स्वदेश अतर आत्मा के अतराल तुम
सुरुचि, सुवृत्ति, सुतेज, सुप्रेरित - मति-विशाल तुम
सुघर सुपूत सुमाता के लाडले लाल तुम
भारत - लाज - जहाज - सुदृढ - सुठि - कर्णधार तुम
भारति - कठ - विहार - विशद - मदार - हार तुम
निज - अभिरुचि निज - भाषा - भूषा - भेष-विधाता
निज सत्ता, निज पौरुष, निज स्वत्वो के त्राता

निज-परता-भ्रम-रहित करो निज-हित-विचार तुम
हित-परता-क्रम-सहित करो पर-हित-प्रचार तुम
सत-सेवा-व्रत धार जगत के हरो क्लेश तुम
देश देश में करो प्रेम का अभिनिवेश तुम
इस विधि से निस्संग करो सेवा-प्रसंग तुम
फिर फिर पर-हित-हेतु भरो उर में उमंग तुम
सब विधि यों युव-वृंद, बनो नर-प्रवर! वद्य, तुम
त्यों हरि-पद-अरविंद-भ्रमर, भुवि-समभिनद्य तुम।

श्रीधर पाठक

आरती

('महारथी' आश्विन १९८४ वि० में प्रकाशित)

भय्या! कुछ सुध है, वह कितना भीषण आर्तनाद होगा?
कितना उस शीतल शोणित के कण-कण में विषाद होगा?
निरवलम्ब, निर्धन, निर्बल वे—किया न तुमने अभी प्रयाण
जाओ, कहीं न भाग सकें प्रतिकारहीन पापी के प्राण।
उनके एक एक आँसू पर लहरा देना लोहित सिन्धु।
कौन कहेगा वीर तुम्हें यदि बन न सके दीनों के बन्धु?

ठुकरा दो आरती-आर्त्त की
देकर प्राण निभालो टेक।
समुद करूँगी वीर बन्धु के
विजयी मस्तक का अभिषेक॥

चारुदत्त

सुसंदेश

(भारत-गीत—१४-११-१९१९)

अहो छात्र - वर - वृन्द, नव्य-भारत-सुत, प्यारे
मातृ - गर्व - सर्वस्व, मोद - प्रद, गोद - दुलारे
अहो भव्य भारत भविष्य निशि के उजियारे
शुभ आशा विश्वास व्योम के रवि, विधु, तारे
गृह-जीवन-नव-ज्योति, प्रेम के प्रकृत स्रोत तुम
विनय-शील-उद्योत, जगत के सुकृत-स्रोत तुम
मातृ-भूमि के प्राण, मातृ-सुख-सप्रदान तुम
मातृ-सत्व-सत्राण-कुशल, भुज-बल-निधान तुम
आर्य-वश-अक्षय-वट के अभिनव प्रवाल तुम
आर्य-सत-जीवन-पट के सुठि ततु-जाल तुम
आर्य-वर्ण-आश्रम-उपवन के फल रसाल तुम
आर्य-कीर्ति-तन्त्री-गुण के स्वर, शब्द, ताल तुम
निज-सुजन्म-सतति-सरोज-वन के मृणाल तुम
मानव-कुल-मानम - हृद के मजुल मराल तुम
जग-सुकृत्य - रत भारत के सौभाग्य - भाल तुम
प्रिय स्वदेश अतर आत्मा के अतराल तुम
सुरुचि, सुवृत्ति, सुतेज, सुप्रेरित - मति-विशाल तुम
सुघर सुपूत सुमाता के लाडले लाल तुम
भारत - लाज - जहाज - सुदृढ - सुठि - कर्णधार तुम
भारति - कठ - विहार - विशद - मदार - हार तुम
निज - अभिरुचि निज - भाषा - भूषा - भेष-विधाता
निज सत्ता, निज पौरुष, निज स्वत्वो के त्राता

निज-परता-भ्रम-रहित करो निज-हित-विचार तुम
हित-परता-श्रम-सहित करो पर-हित-प्रचार तुम
सत-सेवा-व्रत धार जगत के हरो क्लेश तुम
देश देश में करो प्रेम का अभिनिवेश तुम
इस विधि से निस्संग करो सेवा-प्रसंग तुम
फिर फिर पर-हित-हेतु भरो उर में उमंग तुम
सब विधि यों युव-वृंद, बनो नर-प्रवर ! वंद्य, तुम
त्यों हरि-पद-अरविंद-भ्रमर, भुवि-समभिनंद्य तुम।

श्रीधर पाठक

आरती

('महारथी' आश्विन १९८४ वि० में प्रकाशित)

भय्या ! कुछ सुध है, वह कितना भीषण आर्तनाद होगा ?
कितना उस शीतल शोणित के कण-कण में विषाद होगा ?
निरवलम्ब, निर्धन, निर्बल वे--किया न तुमने अभी प्रयाण
जाओ, कहीं न भाग सकें प्रतिकारहीन पापी के प्राण।
उनके एक एक आँसू पर लहरा देना लोहित सिन्धु।
कौन कहेगा वीर तुम्हें यदि बन न सके दीनों के बन्धु ?

ठुकरा दो आरती-आर्त्त की
देकर प्राण निभालो टेक।
समुद करेंगी वीर बन्धु के
विजयी मस्तक का अभिषेक ॥

चारुदत्त

वीर की कामना

(महारथी—अक्तूबर १९२७)

खिदमते मुल्क का जब दिल में ख्याल आएगा। खुद ब खुद पास चला हुनरो कमाल आएगा ।।
निकलेंगे सर से कफन बाँध जो शैदाए वतन। नज़र तब काम कोई कैसे मुहाल आएगा ।।
सबसे पहिले ही मैं मकतल में पहुँच जाऊँगा। जब वतन के लिए मरने का सवाल आएगा ।।
कुशतए तेगे सितम होगा मेरे लाशे पर। खून रोने के लिए माहे हिलाल आएगा ।।
अपने जल्लाद की फिर फिर मैं बलाएँ लूंगा। खीचने ज़िन्दगी में गर मेरी ख्याल आएगा ।।
बेकसी मेरी मनाएगी मेरा मातम और। गुस्ले मय्यत के लिए रजो मलाल आएगा ।।
आग लग जायगी खुद सोज़े वतन से मेरे। लकड़ियाँ चार चिता पर कोई डाल आएगा ।।
शोले उठ उठ के चिता से मेरी दिखलायेंगे। तब नज़र खल्क को भारत का जलाल आएगा ।।
बन के इँगलैंड मसीहा तू ही मुर्दों को जिला। वरना किस काम तेरा हुस्नो जलाल आएगा ।।
साथ मकतल मे मुसाफिर को भी लेते जाना। यह भी अरमान वहाँ दिल के निकाल आएगा ।।

श्री सुखलाल 'मुसाफिर'

अत्याचारी से

(महारथी—अक्तूबर १९२७)

जिस पर आँखें गडा रखी, हम लिये हथेली पर आते ।
धन, वैभव, स्वातन्त्र्य, छिने अब सिर छिनवाने को लाते ।।
एक नहीं बहुतेरे हैं हम माँ के मस्ताने, प्यारे ।
शीश काटते थक जावेंगे, रो देवगे हत्यारे ।।
सन्ध्या समय मिलाने जगती ऊपर नीचे की लाली ।
कौन अधिक है लाल गगन या माँ की गोदी मतवाली ।।
यह मत समझो व्यर्थ चला जावेगा पगलो का बलिदान ।
शुष्क हड्डियो के कल ही, फिर वज्र बनेंगे काल समान ।।

हरिकृष्ण विजयवर्गीय 'प्रेमी'

रण-विदा

(महारथी—दिसम्वर १९२७)

माँ ! जीवन - अंजलि में मेरे तर्पण - हित कुछ अर्पित फूल ।
उन्हें करूँ क्या ? चढा दिया, लो, चरणो की लेने दो धूल ।।

'हृदय - द्वार' हो गये वन्द, कोने में अव क्रन्दित 'अनुराग' ।
अरे सिखाना है जग को जीने का सच्चा राग विराग ।।

इस निसीम गगन के अन्दर, कभी न होगा उल्कापात ।
फिर न देखने में आवेगा, वधिको का भीषण उत्पात ।।

हो जाने दो नर्त्तन-अघ का, वस - माँ ! है यह अन्तिम वार ।
दे देती आहो पर तेरी चडी को जग का अधिकार ।।

झुलस न जायें हृदय-कुसुम, सुठि वितरण करते रहें सुगन्ध ।
सौरभ - लोलुप अलि को मञ्जुल भावो ही से कर दें अन्ध ।।

गूंज उठे यह चतुपार्श्व में, गर्वीला मन - निर्भय नाद ।
'वलि हो जाऊँगी' माँ - हित, माँ ऐसा दे तू आशीर्वाद ।।

महादेवी वर्मा

कडखा

(महारथी—दिसम्बर १९२७)

अरे तू कैसो सिंह कुमार ?
केहरि-कुल में जन्म पाय शठ, भयो सिंह ते स्यार ।।

तजि दुर्गम गिरि-गुहा मूढ ! कत सेवत मञ्जुल कुञ्ज ।
डरत न तोहि क्लीव गिनि नेकहु, क्रीडत कुञ्जर-पुञ्ज ।।

कित तेरो तीखन नख डाढ़ै, वज्रोपम विकराल ।
कित तेरो वह काल अग्नि सम, ज्वाल-ज्वलित मुख लाल ।।

अरे उछरि अजहूँ किन धावत, करि गर्जन गम्भीर ?
उथल पुथल वन मण्डल मे करि, हे कँपाय तव वीर ।।

भोगत राज आज तो गृह मे, शश शृगाल स्वाधीन ।
लागति लाज न तोहि निलज कछु, बन्यो श्वान सम दीन ।।

तेरे कुल में पराधीनता, सब सो भारी पाप ।
सो कलक किन धोवत, कायर मेटि सकल सन्ताप ।।

लै चपेरि चगुल में अरि गण, रण मे अडिग अडोल ।
प्रखर नखन डाढन सो तिन मग, क्यो नहि करत कलोल ।।

मत्त गयन्द कुम्भ शोणित सो, रँगि निज केसर आज ।
निज कर सो करि राजतिलक निज, क्यो न होत मृगराज ।।

वियोगी हरि

लगन

(महारथी—जनवरी १९२८)

यही दिन था शहीदे कौम ने जब प्राण त्यागा था।
यही दिन था हमारा रहनुमा जब हमसे बिछुड़ा था।
जनाज़ा धूम से उस वीर का हमने उठाया था।
चढे वह देश वेदी पर यही वर उसने माँगा था।
विजय की शुभ घडी थी वह इसे हम गम नही कहते।
वह शादी कौम की थी हम उसे मातम नहीं कहते ॥१॥

तपाकर आतशी शोलो ने उसको कर दिया कुन्दन।
जो लौ उट्ठी तो ऐसी—हो गये दोनो जहाँ रौशन।
घिसा जब आस्माँ ने बन गया मलयागिरी चन्दन।
फना ने गोद में लेकर वफा का भर दिया दामन।
झुकाये शीश पहुँचे देव स्वागत हो तो ऐसा हो।
बढी देवाङ्गनाएँ उन चरण-कमलो की पूजा को ॥२॥

सुपथ में कर्मवीरो के लिए खौफो-खतर कैसा।
जो मरता देश के हित—गोलियो का उसको डर कैसा।
न हटती टेक वीरो की क़ज़ा कैसी कशर कैसा।
जो है आज़ाद फिर उसको ये घर कैसा वो घर कैसा।
न ठहरा भीरुता का भूत उनके सामने दम भर।
बनी वह राख की चुटकी चिता की लकडियाँ जलकर ॥३॥

अगर है लाग ईश्वर की—भुला दे राग दुनियाँ का।
अगर कुछ भी वतन का पास है तो कर न ग़म जाँ का।
बहा दे खूं, बहाने दे न लेकिन खून अरमाँ का।
मिटाना जुल्म को शेवा यही है मर्दे मैदाँ का।
जो आता है तो आ, रक्खे हुए सर को हथेली पर।
शहीद आते हैं पूजा को शहीदो की समाधी पर ॥४॥

सता लें दर्दमन्दो को भले मजहब के दीवाने।
हमें क्यो है लगन बलिदान की, परमात्मा जाने।
गिरेंगे अब शमअ पर जुल्म की हम मिस्ल परवाने।
दिखा दी है हमे मज़िल हमारे धर्म-नेता ने।
हम आते हैं तेरी ही राह से तेरी इबादत को।
शहीदे कौम हम भूले नही तेरी शहादत को ॥५॥

'दिल'

वे

(महारथी—फरवरी १९२८)

आमन्त्रण दे विदाओ से खेल खेलने वाले।
दुनिया के सारे विभवो को दूर ठेलने वाले।
दानी ऐसे सब कुछ देकर के भी देने वाले।
मानी ऐसे सुख के वदले सकट लेने वाले।
आत्म-त्याग की भी सीमा है, पर उससे भी आगे—
हँसते हँसते चले गये, वे वीर प्रेम मे पागे।
थे साहस की मूर्त्ति, भरी थी विजली-सी नस-नस में—
फिर वे कैसे रह सकते थे सिंह भला पर-वश मे?
"स्वाधीनता-समर सागर की लहरो पर नाचेंगे—
प्रेम-भरी पाती कृपाण की धारो पर बाँचेंगे।
सोयेंगे सुख-सेज समर में उसको गले लगाके—
जिसमें जीवन की नूतनता छिपी हुई है जाके"
थे ऐसे अरमान अनोखे उन वीरो के मन में—
सफल सर्वथा हुए अहा! वे है जिनके साधन में।

× × ×

फिर हम क्यो रोयें, चिल्लायें, सीखें वैसा मरना—
जिन मरने में भी जीवन का झरता गौरव-झरना।

× × ×

जाओ ! वीरो ! स्वर्ग-धाम में अमर कीर्त्ति फैलाये—
ऐसे वीरो के निवास से, वह भी गौरव पाये।
पर क्या चैन मिलेगा क्षण भर भैया वहाँ वताओ।
विन प्यारी मैया के देखे, कैसे नयन जुडाओ।
इससे यह विश्वास अटल है सत्वर तुम आओगे—
प्रभु से देश-दशा कहने में देर नही लाओगे।
वस इस आशा से ही कुछ-कुछ धीरज हम पाते हैं—
और तुम्हारे वलिदानो की कीर्त्ति-कथा गाते हैं।

चातक कविरत्न

हे वीर वर

(महारथी—फरवरी १९२८)

कैसे तोन तुपक निहारि आँखि तोपि लेहिं,
वार-वार छाती जो छरी के छुए धरके।
कैसे उतपात नाम ही ते ना सकात रहें,
थर-थर गात काँपि जात पात खरके।
हरिऔध कहै कवा कैसे अरि सौहैं होहिं,
जात हैं रसातल को पाँव ही के सरके।
कैसे डरें दौरि कै न द्वार के किवारे देहिं,
का करें वेचारे हैं दुलारे वीर वर के॥
काको चार वाँह है वडो है वलवान कौन,
का न हमें वीरता विभूति को सहारो है।
काहे फिर अरि अवलोकत वजत दाँत,
काहे भूत अभिभूत होत भाव सारो है।
हरिऔध काहे रोम रोम है भभर भरो
काहे भीति पूरित विलोचन हमारो है।
थरकत उर काहे खरकत पात ही के
थर-थर काहे गात काँपत हमारो है॥

'हरिऔध'

अभिलाषा

(महारथी—फरवरी १९२८)

नही चाहता सुखद राज्य-पद, नही, विश्व-वैभव-भण्डार।
नही गगन का चन्द्र सूर्य वन, भोगूं स्वर्गिक-सुख-शृगार।
नही दिव्य मणि माला भूपित, कण्ठ बनाऊँगा अपना।
नही, स्वार्थ का यत्किञ्चित भी, देख सकूंगा मैं सपना।
नही, देख बाधा-विपदाएँ, हृदय ज़रा भी तुम कँपना।
नही, कर्म करने में प्यारे, नयन वन्धुओ ! तुम झपना।

* * *

वान यही हो जन्म जन्म ही,
रखें देश-माता का मान।
काम पडे जब, वलिवेदी पर,
हँसते-हँसते हो वलिदान।

"शान्त"

मोती

(महारथी—मार्च १९२८)

कुछ थोडे से मुकता देखे, राजमुकुट मे जडे हुए।
असख्यात है, सिन्धु-गोद के, अन्धकार में पडे हुए॥
"है अभाग्य मुकताओ का यह" या विधि की विधि इसे कहे ?
"है अत्यल्प जौहरी जग मे", या दुर्लभ निधि इसे कहे ?

* * *

कुछ चढते है सिर पर सुर के, कुछ के वनते है हृद-हार।
फल-फूलकर मुरझा जाते, वन-बागो में अपरम्पार॥
जाना उन्हें न केवल, मानव-कुल ने दिया बिसार।
क्या यह दुख की बात नही है, हो जीवन उनका निस्सार ?

सैयद अमीरअली "मीर"

भारत जननी

(भारत जननी नाटक से)

क्यो माता मुख मलिन ह्वै रही जिय में कहा उदासी।
क्यो घर छोडि त्यागि आभूपण वैठी ह्वै वनवासी॥
कहाँ गयी वह मुख की सोभा कित वह तेज गँवायो।
कित वह श्री वल वुवि उछाह सव कछु नहि आज लखायो॥
कहाँ गयी वह राजभवन कित धवल धाम विनसाए।
कहँ वह ओज प्रताप नसानो वैभव कितहि दुराए॥
सदा प्रसन्न तेज जुत मुख तुव वाल अरक छवि छाजै।
नो दिन ससि सम पीत वरन ह्वै आजु तेज विन राजै॥
धूरि भरी तुव अलक देखि कै मेरो जिय अकुलाई।
छत्र चँवर नित ढुरत जौन मुख तहँ मनु छुटत हवाई॥
कित सव वेद पुरान शास्त्र उपवेद अग सह भागे।
दरसन दुरै कितै जिनके वल तुव प्रताप जग जागे॥
आजु न कोऊ सग अकेली दीन होइ विलखाई।
वैठी क्यो इत जननि कहौ क्यो वुधि गुन ज्ञान नसाई॥

(भारतमाता के पास जाकर कई वेर जगाकर)

क्यो वोलत नहि मुख माय वचन जिय व्याकुल विनु तुव अमृत वयन।
क्यो रून रही अपराव विना नहि खोलत क्यो तुम जुगल नयन॥
विनती न सुनत हित जिय न गुनत भई मौन कियो जागत ही सयन।
मुख खोलौ वोलौ वलि वलि गयी दिन ही में काहे करत रयन॥
विछुरत अव तो फिर कठिन मिलन लै जात जवन मोहि करके जयन॥

* * *

भारतजननी क्यो उदास। वैठी इकली कोउ नाहिं पास॥
किन देखहु यह रितुपति प्रकाश। फूली सरसो वन करि उजास॥

खेतन में पकि रहे लखहु धान। पियरान लग भरि स्वाद पान ॥
रितु वदलि चली देखहु सुजान। अवहूँ तौ चेतौ धारि ज्ञान ॥
भयो सुखद सिसिर को माय अन्त। लखि सबहित मिल गायो वसन्त ॥
तब क्यो न बाँधि कगन समन्त। साजत केसरिया भूमि कन्त ॥

* * *

मलिन मुख भारतमाता तेरो।
वारि झरत दिन-रैन नैन सो लखि दुख होत घनेरो ॥
तुव मुख ससि देखत मन जलनिधि कढत रह्यो चहुँ फेरो।
सोइ मुख आजु बिलोकत दुख सो फट्यो जात हिय मेरो ॥

मलार

लखौ किन भारतवासिन की गति।
मदिरा मत्त भए से सोअत ह्वै अचेत तजि सव मति ॥
घन गरजै जल वरसै इन पर विपति परै किन आई।
ये वजमारे तनिक न चौंकत ऐसी जडता छाई ॥
भयो घोर अँधियार चहूँदिसि ता महँ वदन छिपाए।
निरलज परे खोइ आपुनपौ जागतहू न जगाए ॥
कहा करै इत रहि के अव जिय तासो यहै विचारा।
छोडि मूढ इन कह अचेत हम जात जलधि के पारा ॥

* * *

जावाली जमिनि गरग पातजलि शुकदेव।
रहे हमारेहि अक में कवहि सवै भुवदेव ॥
याही मेरे अक मे रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिनके भारत-गान सो भारत वदन प्रकास ॥

याही मेरे अंक में कपिल सूत दुर्वास ॥
याही मेरे अंक में शाक्य सिंह सन्यास ।
याही मेरे अंक में मनु भृगु आदिक होय ।
तव तो तिनको करत हो आदर जग सब कोय ॥

*　　　*　　　*

कहँ गये विक्रम भोज राम वलि कर्ण युधिष्ठिर ।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर ॥
कहँ छत्री सब मरे विनसि सब गए कितै गिर ।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर ॥

कहँ दुर्ग सैन धन वल गयो, धूरहि धूर दिखात जग ।
उठि अजौं न मेरे वत्सगन, रक्षहि अपुनौ आर्य मग ॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारत-दुर्दशा

('भारत-दुर्दशा' से)

रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई। हा ! हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥
ध्रुव॥ सबके पहिले जेहि ईश्वर धनबल दीनो। सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो। सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो ॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई। हा ! हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥
जहँ भए शाक्य हरिचन्दरु नहुष ययाती। जहँ राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती ॥
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती। तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती ॥
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई। हा ! हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥
लरि वैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी। करि कलह बुलाई जवन सैन पुनि भारी ॥
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी। छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी ॥
भये अब पंगु सब दीन हीन बिलखाई। हा ! हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥
अँगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी। पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ॥
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी। दिन-दिन दूनो दुख ईस देत हा हा री ॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत हाई। हा ! हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥

*　　　*　　　*

जागो जागो रे भाई। सोवत निसि बैस गँवाई। जागो जागो रे भाई।
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो कालराति चलि आई ॥१॥
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस जाई।
निज उद्धार पथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई ॥२॥
अबहूँ चेत पकरि राखो किन जो कछु बची बड़ाई।
फिर पछिताए कछु नहिं ह्वैहै रहि जैहौ मुँह बाई ॥३॥

*　　　*　　　*

भारत के भुजबल जग रच्छित। भारत विद्या लहि जग सिच्छित ॥
भारत तेज जगत विस्तारा। भारत भय कंपत संसारा ॥
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए। थर थर कंपत नृप डर पाए ॥
जाके जय की उज्जल गाथा। गावत सब महि मंगल माथा ॥

भारत किरिन जगत उँजियारा। भारत जीव जिअत ससारा ॥
भारत वेद कथा इतिहासा। भारत वेद प्रथा परकासा ॥
फिनिक मिसिर सीरीय युनाना। भे पण्डित लहि भारत दाना ॥
रह्यो रुधिर जब आरज सीसा। ज्वलित अनल समान अवनीसा ॥
साहस वल इन सम कोउ नाही। तबै रह्यो महिमण्डल माही ॥
कहा करी तकसीर तिहारी। रे विधि रुष्ट याहि की वारी ॥
सबै सुखी जग के नर-नारी। रे विधना भारतहि दुखारी ॥
हाय रोम तू अति वडभागी। बर्बर ताहि नास्यो जय लागी ॥
तोड़े कीरति थम्भ अनेकन। ढाहे गढ वहु करि प्रण टेकन ॥
मन्दिर महलनि तोरि गिराये। सबै चिह्न तव धूरि मिलाये ॥
कछु न वची तुव भूमि निसानी। सो वरु मेरे मन अति मानी ॥
भारत भागन जीतन हारे। थाप्यो पग ता सीस उघारे ॥
तोर्‌यो दुर्गन महल ढहायो। तिनही मे निज गेह वनायो ॥
ते कलक सब भारत केरे। ठाढे अजहूँ लखो घनेरे ॥
काशी प्राग अयोध्या नगरी। दीन रूप सम ठाढी सगरी ॥
चडालहु जेहि निरखि घिनाई। रही सबै भुव मुंह मसि लाई ॥
हाय पचनद हा पानीपत। अजहुँ रहे तुम धरनि विराजत ॥
हाय चितौर निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहि मँझारी ॥
जा दिन तुव अधिकार नसायो। सो दिन क्यो नहिं धरनि समायो ॥
रह्यो कलकन भारत नामा। क्यो रे तू वारानसि धामा ॥
सब तजिकै भजिकै दुख भारी। अजहुँ बसत करि भुव मुख कारी ॥
अरे अग्रवन तीरथ राजा। तुमहुँ बचे अबलौं तजि लाजा ॥
पापिनि सरजू नाम धराई। अजहूँ वहत अवधतट जाई ॥
तुममे जल नहिं जमुना गगा। बढहु वेग करि तरल तरगा ॥
धोवहु यह कलक की रासी। वोरहु किन झट मथुरा कासी ॥
कुस कन्नौज अग अरु वगहि। वोरहु किन निज कठिन तरगहि ॥
वोरहु भारत भूमि सबेरे। मिटै करक जिय के तब मेरे ॥
अहो भयानक भ्राता सागर। तुम तरगनिधि अति वल आगर ॥

वोरे वहु गिरि वन अस्थाना। पै विसरे भारत हित जाना ॥
वढहु न वेगि धाइ क्यो भाई। देहु भरत भुव तुरत डुबाई ॥
वेरि छिपावहु विन्ध्य हिमालय। करहु सकल जल भीतर तुम लय ॥
धोवहु भारत अपजस पका। मेटहु भारत भूमि कलका ॥

हाय यही के लोग किसी काल में जगन्मान्य थे।

जेहि छिन वल भारे हे सवै तेग वारे। तव सव जग धाई फेरते हे दुहाई ॥
जगसिर पग वारे धावते रोस भारे। विपुल अवनि जीती पालते राजनीती ॥
जग इन वल काँपे देखि के चण्ड दापे। सोइ यह प्रिय मेरे ह्वै रहे आज चेरे ॥
ये कृष्ण वरन जव मधुर तान। करते अमृतोपम वेद गान ॥
तव मोहत सव नर नारि वृन्द। सुनि मधुर वरन सज्जित सुछन्द ॥
जग के सवही जन धारि स्वाद। सुनते इनही को वीन नाद ॥
इनके गुन होतो सवहि चैन। इनही कुल नारद तानसेन ॥
इनही के क्रोध किये परकास। सव काँपत भूमण्डल अकास ॥
इनही तक हुकृति शब्द घोर। गिरि काँपत हे सुनि चारु सोर ॥
जव खेत रहे कर मे कृपान। इनही कहँ हो जग तृन समान ॥
मुनि कै रनवाजन खेत माहि। इनही कहँ हो जिय सक नाहि ॥

याही भुव महँ होत है, हीरक आम कपास।
इतही हिमगिरि गगजल, काव्य गीत परकास ॥
जावाली जैमिनि गरग, पातञ्जलि सुकदेव।
रहे भारतहि अग मे, कवहि सवै भुवदेव ॥
याही भारत मध्य में, रहे कृष्ण मुनि व्यास ॥
जिनके भारत-गान सो, भारत वदन परकास ॥
याही भारत में रहे, कपिल सूत दुरवास।
याही भारत मे भये, शाक्य सिह सन्यास ॥
याही भारत में भये, मनु भृगु आदिक होय।
तव तिनमो जग में रह्यो, घृना करत नहि कोय ॥
जासु काव्य सो जगत मधि, अव लौं ऊँचो सीस।
जासु राज वल धर्म की, तृपा करहि अवनीस ॥

सोई व्यास अरु राम के, वश सबै सन्तान।
ये मेरे भारत भरे, सोइ गुन रूप समान॥
सोई वश रुधिर वही, सोई मन विश्वास॥
वही वासना चित वही, आसय वही विलास॥
कोटि कोटि ऋषि पुन्य तन, कोटि कोटि अति सूर।
कोटि कोटि बुध मधुर कवि, मिले यहाँ की धूर॥
सोइ भारत की आज यह, भई दुरदसा हाय।
कहा करैं कित जायँ नहिं, सूझत कछू उपाय॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

महाराष्ट्र भूमि

(वैश्योपकारक मे प्रकाशित)

१

हे, हे, महाराष्ट्र धरा! यदीया, तेज प्रतापाकित है त्वदीया
सो, भूमि तेरा यश गा रही है, तुझे जगी सी, कुछ पा रही है।

२

तू रिक्तहस्ता, पर, तेज भारी, तन्द्रान्विता, किन्तु सुकर्मधारी
तिरस्कृता हाय न शोकशीला, अनैक्ययुक्ता न तु हीन लीला

३

तूने सदा वीर, विरक्त जाए, जिन्हें न कोई जग बीच पाए,
न वीरसू! केवल प्राण तू ले, ससार को बोध विरक्ति भी दे॥

४

समर्थ-माता! शिवदा! 'त्वमेव', उद्धारकर्त्री! सुखदा! 'त्वमेव'
दे तूं हमें माँ! अब शीघ्र मुक्ती, 'का ते स्तुति स्तव्य परापरोक्ति।'

राधाकृष्ण मिश्र

झुकी कमान

(वैश्योपकारक मे प्रकाशित)

१

आये प्रचण्ड रिपु, शब्द सुना उन्ही का ,
भेजी सभी जगह एक झुकी कमान।
ज्यो युद्ध चिह्न समझे सब लोग धाये ,
त्यो साथ थी कह रही यह व्योमवाणी।

"सुना नही क्या रणशङ्खनाद ?
चलो पके खेत किसान ! छोडो ,
पक्षी उन्हें खोय, तुम्हें पडा क्या ?
भाले भिडाओ अब खड्ग खोलो।
हवा इन्हें साफ किया करेगी ,
जो शस्त्र, हो लाल न देश छाती।"

स्वाधीन का सुत किसान सशस्त्र दौडा ,
आगे गई धनुष के सँग व्योमवाणी ॥

२

"छोडो, शिकारी ! गिरि को शिकार ,
उठा पुरानी तलवार लीजे,
स्वतन्त्र छूटें अब वाय भालू,
पराक्रमी और शिकार कीजै।
बिना सताये मृग चौकडी लें—
लो शस्त्र, है शत्रु समीप आये।"

आया सशस्त्र तजके मृगया अधूरी
आगे गई धनुष के सग व्योमवाणी।

३

"ज्योनार छोडो सुख की, रईसी।
गीतान्त की बाट न वीर! जोहो,
चाहे बना झाग सुरा दिखावै
प्रकाश में सुन्दरि नाचती हो।
प्रासाद छोडो, सब छोड, दौडो—
स्वदेश के शत्रु अवश्य मारो।"

सर्दार ने धनुप ले, तुरही बजाई—
आगे गई धनुप के संग व्योमवाणी॥

४

"राजन्! पिता की तव वीरता को
कुञ्जो, वनो में सब गा रहे हैं,
गोपाल बैठे जहं गीत गावें,
या भाट वीणा झनका रहे हैं।
अफीम छोडो, कुलशत्रु आए—
नया तुम्हारा यश भाट पावैं।"

बन्दूक ले, नृपकुमार बना सुनेता,
आगे चली धनुप के संग व्योमवाणी॥

५

"छोडो अधूरा अब यज्ञ ब्रह्मन्!
वेदान्तपारायण को बिसारो,
विदेश ही का बलि वैश्वदेव,
औ तर्पणो में रिपु-रक्त डारो।
शास्त्रार्थ पास्त्रार्थ गिनो अभी ने

५

रहैं चाहे कोई विषय-सुख के कीट बन के,
न देखैंगी तू तो पल-भर उन्हें कष्ट सह के।
त्वदीया निन्दा से उदर भर लेंगे बहुत से,
दबाई जीभो से जन तव बडाई कर सकें॥

६

स्वधा, स्वाहा, को तू प्रति समय में ठीक कहके,
न प्रायश्चित्तीया बन कभि अपभ्रंश कहके।
कहाँ घी पावैंगी ? अब सुखद गो-वंश न रहा,
ढकैंगी काहे से सरस तनु जो कोमल महा ?

७

मिलैंगी रेजी तो, यदि वह नही, वल्कल सही,
कलेजे में वेदी रच यह प्रतिज्ञाग्नि धर ली।
विलासो की मज्जा हवि अब बनैंगी सहज में,
सदा स्वार्थो की तू बलि-पशु करैगी हृदय पै॥

८

अहो धन्या! देवी! यदि यह प्रतिज्ञा निभ गई,
अँधेरे को नांवा, अब उदय-लाली लख गई।
उषा का झण्डा ये सुभग अगुआ है बन गया,
प्रतीची का जाला नयन-पट से है हट गया॥

९

विदेशी चीजें ही बन रह! गई जन्म-गुटिका,
स्वदेशी पावैं, वा, अब, न, हम, हा! हन्त खटका,
गडैंगे कांटे भी, नयन, जल की वृष्टि पडते,
न ढीली होने दे कमर, तुम देशार्य महते।'

१०

उजाला देवैंगी प्रवल हठ की ज्योति तुझको ,
घृणा के झोके भी नहिं कर सकैं मन्द उसको ।
वढे ही जाना तू, नहिं चरण भी एक हटना ,
जमाना ज्योती को विजय-गिरि पै जाय डटना ॥

११

वहाँ, आत्म-स्वार्थ-प्रवण-मन का होम करना ,
विरोवो के आगे, पण सम, निज प्राण वरना ।
यही इच्छा है? जा, भगवति ! भला हो तव सदा,।
हमारा भी होगा तव चरण में मगल सदा ॥

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

राष्ट्रीय गान

(चैत्र सवत् १९६३)

सुहृद्वर भारत सन्तानो, एक समययुत होय विनीत।
असीम भारत की मत्ता के, गावो ध्वनि से यश के गीत ॥

अवनीतल पर अन्य भूमि नहिं, देखो भारतभूमि समान ।
सव विदेश, शिरमौर श्रेष्ठ अति, मुख-मम्पति की यह खान ॥

वीर भूमि कर्णाटक, सिन्धु, ब्रह्मदेश, गुर्जर सौराष्ट्र ।
राम भूमि, मद्रास, पञ्चनद, वग, मध्य, मालव, महाराष्ट्र ॥

तट हिमाद्रि, गिरि, कुञ्ज, सरित, नग, पद्, ऋतु नित प्रति कर निवास ।
फलवति, पुष्पवति, पुण्यवति, स्रोतस्वति, धनुमति है ये सव सुख रास ॥

हाय आज उन्नत भारत की कैसी ये दुर्दशा महान।
विद्या, बुद्धि, कला, कौशल, बिन, दिखा रहा है सब सुनसान ।।
परम पुरातन शिल्प आदि के टूट-फाट सब गए निशान।
जीर्ण-शीर्ण जो बचे शेप हैं सो धरणी धँस रहे, सुजान ।।
आये, हिन्दु, सिख, मुसलमान, ब्रह्मी, जैनी, सत वुद्धि वुद्ध।
तथा पारसी, यहूदि, खि्रश्चियन, पूर्व देश के वासी शुद्ध ।।
धरो परस्पर मित्र भावना, देशबन्धु सब करके सम्प।
एक रक्त धारी भ्राताओ, उपजाओ अरि मन में कम्प ।।
शूरवीर भारत भू पुत्रो, शौर्यपूर्ण करके निज अग।
जय घोषण से नभ गर्जाओ, बदलाओ भारत का रग ।।
तरुण तनय भारत के जागे, धरो न भय मन में लवलेश।
स्वदेश सेवा में तत्पर हो, काटो भारत का सब क्लेश ।।
समय वह भारतवामी जन, तन, मन, धन, मे हो अनुरक्त।
करो कला कौशल की उन्नति, चमकाओ भारत को भक्त ।।
काग्रेस में यत्नवान हो, करो स्वदेशी वस्तु प्रचार।
शिल्पालय, कालेज खोलकर, देशी शिल्प का करो सुधार ।।
विश्व कर्म के विशद वशधर, शिल्पकार, विज्ञानि सुजान।
नम्र विनय यह सुनो हमारी, करो सतत उद्योग महान ।।
उद्योगी नरसिह निकट नित, वसे लक्ष्मी दासी समान।
नि स्वारथ उद्योग व्यर्थ नही जाता, है यह नीति निदान ।।
जहाँ पुरुप कर्त्तव्य-परायण, विजयी होता है वह देश।
पर उन्नति होवेगी तव ही, जव होवै सम्पत्ति विशेप ।।
सुमती, सम्पत्ति औ जय, लक्ष्मी, नितप्रति रही है सव साथ।
यदि कुमनय की हुई प्रवलता, तो समझो निश्चय निष्पात ।।

चम्पालाल जौहरी 'सुधाकर'

भारत माता और योरोप रमणी का परस्पर आलाप

(वैशाख १९६३ संवत् वि०)

(एक स्त्री अपने अनेक बालकों के साथ दीवानी-सी घूमती हुई दिखाई पड़ती है। इसे देखकर, भारतभूमि को देखकर, एक दयालु की दयामयी शंका)

रोला

शुभ गुणयुत सुकुमारि दया लोचनि सुचिवारिणि।
कौन अहै यह तिया वियोगिनि मोहन कारिणि॥

चौंकति चलति विहाति निरेखति निज प्रतिपालक।
व्यथित हिया घबराति रुअति लखि दुखिमन बालक॥

कौन हेतु सब बाल रुअत याके अति बेकल।
दुसह दुःख बहु शोक रोग ते पीड़ित दुरबल॥

कउ रोगी कउ दुखी कऊ बिनु अन्न बिलाकुल।
अन्यायिन ते दुखी कऊ नृप नीति समाकुल॥

अन्न-वस्त्र ते हीन कला चतुरता भुलानी।
प्रिय कउ रतन गँवाइ मनो यह फिरति देवानी॥

अहै यहै कै जाहि कहत सब भारतमाता।
जाकह गुण सम्पन्न बृटिश जाहिर परित्राता॥

भरत नृपति इहि बहुत लाडते पालि बढायो।
ऋषिगन शुभ गुन धर्म दया दृढ रीति सिखायो॥

पुरु दधीच हरिचन्द्र आदित्य गन की प्यारी।
क्यों कह फिरति बेहाल विकल तनु लहति बेचारी॥

यह तो सुख सम्पत्ति भरी बहु दिन ते आवति।
अब क्यों रोअति सती बिलखि बालक समुहावति॥

जदपि कऊ सुत याहि बसन खैंचत पुनि मारन।
तऊ न तजति पिआर प्रेम जनु हिय टरि चारन॥

कौ कह चूमति गोद वहति कोऊ कह प्यारति।
कौ कह देश विलोकि विलखि अँसुअन दृग ढारति॥
यही अहै हम जानि सुघरि भारत की माता।
चमकति ग्रथन माँहि सुभग जाके अहिवाता॥

दोहा

इहि अवसर पै आइकै इक तिय अति इतरात।
पूछन लगी विनोदयुत भरत भूमि की बात॥

योरोप रमणी—

क्यो री तू कित जाइ कौन तुम री अतिकाहै?
कृश तनु बाल तिहार शोक-सागर अवगाहै॥

भारतमाता—

भरत नृपति प्रतिपालि हमहि पुनि बहु सुख दीनो।
सौर चन्द्र दौ वश धरन ते रहि रसभीनो॥
पुनि विशेन उज्जैन राज चौहान हमारे।
हम कहँ अति सुख दीन बहुत उन हमहिं पिआरे॥

दोहा

भरत भूमि की बात सुनि यूरुप रमणी चौंकि।
ऐंठति अति इतराति पुनि बोली सम्मुख तौंकि॥

(अंग्रेजी धुन से गाती हुई)

वीर नैपोलियन हेम्डन् नेलसन्।
अल्फ्रेड दि ग्रेट अलेग्जेण्डर दि ग्रेट॥
जौन हाउवर्ट क्रामवेल् हेमडन्।
फ्रेडरिक् दि ग्रेट सो पीटर दि ग्रेट॥
मिजनी मिटनी राब्वर्ट ब्रुस।
लूथर जुलियम सीजर् मार्टिन्॥

अस रणजीत जहाँ गुण गाहक। देश हेतु निज तन को दाहक॥
कल बल छल जित राजत नीके। कलाचन्द जहँ जग रजनी के॥

गूढ नीति जितकी जग जाहिर। जितके चार पादरी बाहिर॥
जहँ स्वारथ परतच्छ विराजै। जहाँ धर्म देशोन्नति काजै॥
दया दरिद जित घँसन न पावै। स्वेच्छाचारि तिया जित भावै॥
सात पाँच मिलि जिन करि काजा। राजकाज जहँ गँठत समाजा॥
पुरुप तिया जित के सब लोगू। मिलत सबहि सबसे सुख भोगू॥
जित के लोग सदा सुख पावैं। बन्धन कऊ नही लखि आवैं॥

दोहा

खेतहु जहाँ तेमजिला कहा कथा गृह केरि।
ग्यारह मजिल लौं जहाँ गृह सुन्दर चहुँ फेरि॥

चौपाई

विघ एक जिहि जगह सुहावै। सो उज्वल मुख लौर्ड कहावै॥
वानिज ही परवान जहाँ के। सीञ होत जित नित परजाके॥

(भारतभूमि की ओर दिखाकर)

जित के राजनु मारहु स्वामी। जो सब देशन में अभिरामी॥
तब क्यो मो सम्मुख तू ठाटो। राजन अधिक प्रशतति बाढी॥
तुमरे कोप माहि कउ राजा। कौन सुकीरति के कउ काजा॥
तो बखानु उनके गुन नीके। सूखे सरस मधुर वा फीके॥

दोहा

सुनि बोली बिल्खात अति भरत भूमि सुठि बैन।
रहे अनूपम भूजित अब जो कहु दुख दैन॥

रोला

जलधि जाहि चहुँ फेरि उछलि जित परिख बनावैं।
विन्ध्य मेरु गिरि आदि किला सो चौकस भावैं॥
मधुर अमित बहु अन्न कन्द फल तें नित सोहित।
अतल औषधी जटी जटित जेते सब मोहित॥

माधव मिश्र

भारत-स्तव

(इन्दु मासिक पत्र अप्रैल, १९१२)

१ ✓

वसते वसुधा पर देश कई
जिनकी सुखमा सविशेष नई।
पर भारत की गुरुता इतनी।
इस भूतल पै न कही जितनी ॥

२

गुण गुम्फित है इसमें इतने
पृथिवी पर है न कही जितने ॥
किसकी इतनी महिमा वर है ?
इसपै सब विश्व निछावर है ॥

३

सुख मूल उशीर सुगन्धि सनी।
क्षिति शोभित काञ्चनरेणु घनी ॥
शुचि सौरभपूर्ण सुवर्ण जहां।
वसुधा पर है वह देश कहां ॥

४

✓

उपजें सब अन्न सदा जिसमे।
अचला अति विस्तृत है इसमे ॥
जग में जितने प्रिय द्रव्य जहां।
समझो सबकी सबभूमि यहां ॥

५

प्रिय दृश्य अपार निहार नये।
छवि वर्णन में कवि हार गये॥
उपमा इसकी न कही पर है।
धरणीवर ईश धरोहर है॥

६

जल-वायु महा हितकारक है।
रुजहारक स्वास्थ्य-प्रसारक है॥
द्युतिमन्त दिगन्त मनोरम है।
क्रम षट्ऋतु का अति उत्तम है॥

७

सुखदायक ऊपर श्याम घटा
दुखहारक भूपर शस्य छटा।
दिन में रवि लोक प्रकाशक है।
निशि में शशि ताप-विनाशक है॥

८

छवियुक्त कहीं पर खेत हरे।
वन बाग कहीं फल-फूल भरे॥
गिरि उच्च कहीं मन मोह रहे।
नव ठौर जलाशय सोह रहे॥

९

रत्नाकर की रसना पहने।
वह पुष्प-समूह बने गहने॥
परिधान किये तृण चीर हरा।
अति सुन्दर यह दिव्य धरा।

१०

बहु चम्पक कुन्द कदम्ब बड़े।
बकुलादि अनन्त अशोक खड़े॥
कितने न इसे वट वृक्ष मिले।
अति चित्र विचित्र प्रसून खिले॥

११

मृदु बेर मुखप्रिय जम्बु फले।
कदली सहतूत अनार भले॥
फलराज रसाल समान कही।
फल और मनोहर एक नहीं॥

१२

कृषि केसर की भरपूर यहाँ।
मृग गन्ध कुसुम्भ कपूर यहाँ॥
मधु का समझो बस कोप इसे।
रस हैं इतने उपलब्ध किसे?

१३

अमृतोपम अद्भुत शक्तिमयी।
जिनकी सुगुण श्रुति नित्य नयी॥
इसमें बहु औषधियाँ खिलती।
जल में थल में तल में मिलती॥

१४

कृषि में इसने जग जीत लिया।
किसने इस सा व्यवसाय किया?
सन रेशम ऊन कपास अहो।
उपजा इतना किस ठौर कहो?

१५

अवनी उर मे वहु रत्न भरे।
कनकादिक धातु समूह-धरे ॥
वह कौन पदार्थ मनोरम है?
जिसका न यहाँ पर उद्गम है॥

१६

कवि पण्डित वीर उदार महा।
प्रगटे मुनि धीर अपार यहाँ॥
लख के जिनकी गति के मग को।
गुरु ज्ञान सदा मिलता जग को॥

१७

वहु भाँति वसे पुर ग्राम घने।
अव भी नभचुम्वक धाम वने॥
सव यद्यपि जीर्ण विशीर्ण पडे।
पर पूर्वदशास्मृतिचिह्न खडे॥

१८

अव भी वन में मिल के चरते।
वहु गोगण है मन को हरते॥
इन सा उपकारक जीव नही।
पय-तुल्य न पेय पदार्थ कहीं॥

१९

मदमत्त कहीं गज झूम रहे।
मुदमान कहीं मृग घूम रहे॥
शुक चातक कोकिल वोल रहे।
कर नृत्य शिखीगण डोल रहे॥

२०

शतपत्र कही पर फूल रहे ।
मधुमुग्ध मधुव्रत भूल रहे ।।
कलहस कही रव है करते ।
जलजीव प्रमोद भरे तरते ।।

२१

शुचि शीतल मन्द सुगन्ध सनी ।
फिरती पवन प्रिय नारि बनी ।।
हरती सबका दुख सेवन में ।
भरती सुख है मन में तन मे ।।

२२

जगतीतल मे वह देश कहाँ ?
निकले गिरिगन्ध विशेप जहाँ ।।
इसमें मलयाचल शोभन है ।
जिसमें घन चन्दन का वन है ।।

२३

सिर है गिरिराज अहो इसका ।
इस भाँति महत्व कहो किसका ।।
तुहिनालय यद्यपि नाम पडा ।
विभवालय है यह किन्तु बडा ।।

२४

वर विष्णुपदी बहती इसमें ।
रवि की तनया रहती इसमे ।।
जवनाशक तीर्थ अनेक यहाँ ।
मन को मिलती चिर शान्ति जहाँ ।।

२५

क्षितिमण्डल था जब अज्ञ सभी ।
यह था अति उन्नत सभ्य तभी ॥
वह देश समुन्नत जो अब है ।
शिशु शिष्य इसी गुरु के सब है ।

२६

शुचि शौर्यकथा इतनी किसकी ?
जगविश्रुत है जितनी इसकी ॥
अमरो तक का यह मित्र रहा ।
अतिदिव्य पवित्र चरित्र रहा ॥

२७

ध्रुव धर्ममयी इसकी क्षमता ।
रखती न कही अपनी समता ॥
अतएव इसे भजिये भजिये ।
जननी पर प्रेम नही तजिये ॥

अज्ञात

वन्दे मातरम् का पद्यात्मक छाया अनुवाद

(हिन्दी प्रदीप—जनवरी १९०६)

वन्दौं मात तुम्हैं ।

स्वच्छ मधुर जल भरे जलाशय, हरियाली लह लहात ।
चाँद उजास छिटिक चहुँ ओरा, कुसुमित कानन अधिक सोहात ।।वन्दौं मात तुम्हैं ।

मलयज रज मकरन्द बहाये, उपवन वीथिन वहत बयार ।
सुखदाता वरदा अम्वे, करण रसायन शबद तुम्हार।। बन्दौं मात तुम्हैं ।

तीस करोर मनुज सुनि कलकल, दुखित दशा महँ तिनहि निहार ।
गहि कर वाल दुहूँ कर माता, करन चहौ तिन कर उद्धार।। वन्दौ मात तुम्हैं ।

रिपु दल घालक तव विशाल भुज, कहत तोहि कत सब जग अबला।
सपद सुख जव तुव अधीन तव, क्यो न कहैं तुहि प्रवला।। वन्दौं मात तुम्हैं ।

निगम अगम विद्या सब हमरी, आरज धरम हमारी ।
विभव वित्त धन धान्य सवहि महँ, निज महिमा विस्तारी।। वन्दौ मात तुम्हैं ।

देहहि प्रान, हृदय महँ भक्ती, वाहु दुहुन मह शक्ती ।
सब में व्याप रही हो जननी, अद्‌भुत तुव करतूती।। वन्दौं मात तुम्हैं ।

दुर्गा सब दुर्गति की हरनी, दशभुज आयुध धरनी ।
घर घर प्रतिमा लसत तुम्हारी, तव क्यो न होहु मन हरनी।। वन्दौ मात तुम्हैं ।

कमला कमल विहारिनि माता, बिमल अतुल तुव भासा ।
सुस्मित गात सरल चित ह्वैके, करहु कृपा निज दासा।। वन्दौं मात तुम्हैं ।

सुफल मनोरथ ते जन होवहि, जे विनवै तुहि चरनी ।
पोपन भरन सवहि तव करगत, किमि चुकवौ तुव करनी।। वन्दौं मात तुम्हैं ।

वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (मूल-लेखक)

स्वदेशी कजली

(हिन्दी प्रदीप–अगस्त १९०६)

अब जनि विलम लगावहु कछु तुम शुभ अवसर यह आयो रामा।
हरि हरि घर घर करहु स्वदेशी को प्रचारा रे हरी (टेक) ॥ १ ॥

काहे निपट निकम्मी वस्तुन लेवन माँ चित लायो रामा।
हरि हरि दै विदेश, धन जनि फूंकी घर सारा रे हरी ॥ २ ॥

हा! चटकीली वस्तु विदेशी भारत भर है छायो रामा।
हरि हरि सब भारत वस्तुन गारत करि डारा रे हरी ॥ ३ ॥

भये विदेश विलासी क्यों सब का तुम को भरमायो रामा ?
हरि हरि करत घृणा निज देश, विदेश पियारा रे हरी ॥ ४ ॥

जेहि के बल जग सभ्य भयो सब जेहि जग ज्ञान सिखाया रामा।
हरि हरि नाम धाम सो डूबो सबहि हमारा रे हरी ॥ ५ ॥

ताली दै दै हँसत हमैं, सब नीच असभ्य बनाया रामा।
हरि हरि तौहूँ धिक! तुम करत विदेश पियारा रे हरी ॥ ६ ॥

जानहु का नहि पुन्य भूमि भारत हरि अहै बनायो रामा।
हरि हरि होत जहाँ तृण शस्य अनाज अपारा रे हरी ॥ ७ ॥

जल थल सरिता सर उपवन वन मुनि मन लेन लुभायो रामा।
हरि हरि प्रकृति देवि की छवि है जहँ सुख द्वारा रे हरी ॥ ८ ॥

सुख सम्पति दाता–भारत की सेवा ध्यान लगाओ रामा।
हरि हरि धन जन मन अर्पण सब करहु तुम्हारा रे हरी ॥ ॥ ९ ॥

स्वास वायु जल लौं जीवन महँ "जय श्री भारत" गाओ रामा।
हरि हरि देवहु तुरत विदेशी वस्तुन जारा रे हरी ॥ १० ॥

"खाओ पहिनो ओढ़ो, देओ, लेओ जो मन भायो रामा"।
हरि हरि सो सब होय स्वदेशी यदि प्रण धारा रे हरी ॥

पाण्डेय लोचनप्रसाद (बालपुर)

श्रीयुत लाजपतराय

(हिन्दी प्रदीप—जुलाई १९०७)

धन्य आर्य कुल वीर लाजपत नर वर श्रीयुत ।
धन्य वन्धु हित करन धन्य भारत सुयोग्य सुत ॥

धन्य दया के पुञ्ज वुद्धि विद्या के सागर ।
सहनशील गम्भीर धन्य पञ्जाब - दिवाकर ॥

मृदुभाषी निष्कपट साधु भारत हितकारी ।
सदाचार - पटु श्रमी देश—स्वातन्त्र्य भिखारी ॥

नीतिविज्ञ वाचाल न्याय के रूप गुणागर ।
अति उदार दृढ वीर हृदय निश्छल करुणाकर ॥

सरस भाव परिपूर्ण जासु केहरि सम वानी ।
राजनीति उपदेश अनेकन रस से सानी ॥

दुखी प्रजायुत मातृभूमि की दशा सुधारक ।
शासन के अन्याय - जनित - सताप - निवारक ॥

भारत जन सर्वस्व सुमन्त्री वृटिश राज के ।
स्वहृदय पोषक वायकाट इच्छुक स्वराज के ॥

तन मन धन से रहत सदा जो देश कार्यरत ।
वीर भूमि को वीर पुत्र सोइ वीर लाजपत ॥

देश वन्धु हित छाँडि आपनो यश चिरसचित ।
तज्यो पिता प्रिय पुत्र मित्र वन्धुन स्वदेश हित ॥

प्यारे तेरो नाम सुयश अतिशय प्रिय पावन ।
पराधीनता शोक व्यथा सताप नसावन ॥

भारत के इतिहास बीच तेरो गुण विस्तृत ।
स्वर्णाक्षर में आर्य! होयगो निश्चय मुद्रित ।

प्यारे तेरे विमल कीर्ति की सरस कहानी ।
पढि पढि अति हिय मोद लहैंगे बुध भट ज्ञानी ॥

कविजन आदर सहित तुम्हारो गान करैंगे ।
ईर्षी तुव यश सुनत दांत तर जीभ धरैंगे ॥

करि तेरो अनुकरण देश के जेते बालक ।
अवश होयंगे मातृभूमि के दृढ़ प्रतिपालक ॥

बुधि विद्या कछु नाहि कहाँ लौं तुव गुण गाऊँ ।
तुव छाया तर बैठ सदा तुव कुशल मनाऊँ ॥

माधवप्रसाद शुक्ल प्रयाग

वीर बन्धु

(हिन्दी प्रदीप—अक्तूबर १९०७)

"वीर वन्धु" है कौन देश में कौन बुद्धि वल शाली है ।
यदि विचार देखो भाई तो, आर्य पुरुष वगाली है ॥

कौन स्वदेशी सेवक सच्चे कौन सुदृढ प्रण पालक है ।
वुध जनो यह कहना होगा, वग देश के वालक है ॥

देशभक्त है यही लोग अरु, इनका यश जग छायेगा ।
अल्प दिनो में इनके ही, कर्तव का फल दिखलायेगा ॥

अधिक लोग इस "भारत" में तो, वात मिलाने वाले है ।
देशभक्ति की मधु पीकर, कुछ यही हुए मतवाले हैं ॥

आत्म स्वार्थ, का त्याग यही जन कैसा ठीक दिखाते है ।
सरल चित्त से देखो तो ये मानो हमे सिखाते है ॥

जो सुकुमार वालको पर भी निर्दय दया न खाते है ।
इन दुष्कर्मों से स्वजाति का परिचय जो दिखलाते है ॥

ऐसे प्रवल हाकिमो का भी सह लेते है वज्र कुठार ।
हँसते हुए चले जाते है आज देश हित कारागार ॥

प्यारे महाराष्ट्र भाई एक इनके तुम्हीं सहायक हो ।
आर्य पुरुष साहसी हृदय अरु भारत के सुखदायक हो ॥

वन्धु गणो! हम अधिक वदना आज तुम्हारी करते है ।
तुम लोगो के ही कर्तव को देख धैर्य हिय धरते है ॥

आर्य गणो! इसमें जगदीश्वर तुम लोगो की करे सहाय ।
वढे तुम्हारी शक्ति अधिकतर भारत में धन धर्म दिखाय ॥

हा ! पजाव देश वासी गण तुम कुछ नही लजाते हो ।
देशभक्त जन सहें दुःख तुम राजभक्ति दिखलाते हो ॥

थोड़े दिन इस जग मे रहना जो कुछ भी कर जाओगे ।
पुनर्जन्म लेकर निश्चय ही उसका प्रतिफल पाओगे ॥

युक्त प्रान्त वालो को देखो कैसे सुख से सोते हैं ।
जरा ध्यान भी नही देश का व्यर्थ जिन्दगी खोते हैं ॥

टसको मसको देखो भालो कुछ तो मुँह से बोलोगे ।
अच्छा भला यही बतला दो कब तक आँखे खोलोगे ॥

माधव शुक्ल

दासता

(हिन्दी प्रदीप—अक्तूबर १९०७)

भूमि के सम्पूर्ण देशो में कभी जो एक था ।
हा ! जो 'भारत' घर गुलामो का कहा जाने लगा ॥

थी जगद्विख्यात जिसकी वीरता, कारीगरी ।
धर्म-तत्परता, सुजनता, एकता, सौदागरी ॥

और विद्या का भरा आगार था जिस देश मे ।
हा ! वही सहता अनादर 'दासता' के भेख मे ॥

वीरवर जयमल्ल, पुत्त, प्रताप, पृथ्वीराज से ।
मान गौरव के वढावनहार ये जिस देश के ॥

प्राण रहते जिन्होने छोडी नही 'स्वाधीनता' ।
हुए रिपु भी मुग्ध जिनकी देख वल शालीनता ॥

'दासता' सुनते ही जिनके क्रोध की सीमा न थी ।
आज उनके वशधर हा ! दास वन वैठे सभी ॥

इस तरह कितने वली इस भूमि ने पैदा किये ।
मातहित. जिन प्राण जगहित सुयश तज सुरपद लिये ॥

हाय ! भारत आज यह तेरी दशा क्या हो गई ।
भूमि में विख्यात महिमा है कहाँ सव खो गई ॥

देश के प्यारे जनो अव भी पडे क्यो सोते हो ।
'दासता' को मानकर सुख व्यर्थ दिन क्यो खोते हो ॥

भाइयो यह देश गारत है इसी का ही किया ।
देश से 'स्वाधीनता' को है इसी ने हर लिया ॥

है इसी ने ही नसाया धर्म हिन्दुस्तान का।
कर दिया हमको निरा ज्यो पूतला वे जानका ॥

बोलने लिखने तलक की अब मनाही हो गई।
देश की सत्कीर्ति सब इसकी बदौलत धो गई ॥

है किया चौपट इसी ने सब हमारे कारोबार।
अब मँगाती भीख हमसे है फिराकर द्वार-द्वार ॥

लोभ दिखला कर फँसाया देश को है किस तरह।
जाल मे स्वच्छन्द पक्षी आन फँसता जिस तरह ॥

हे विभो! भारत को पहले की तरह भरपूर कर।
शीघ्र ही सर्वस्वहारिणि 'दासता' को दूर कर ॥

माधव शुक्ल

कष्ट

(हिन्दी प्रदीप—नवम्बर १९०७)

१

रे! कष्ट तोहि नहिं और ठौर,
भारत गर लागत दौर दौर।
यह भूमि भई तोहिं अस पियारि,
रम रह्यो सकल सुध-बुध बिसारि॥

२

पहले छलयुत दृढ़ प्रीत कीन्ह,
पुनि धीरे धीरे स्ववश कीन्ह।
अब घर घर डारिन पात पात,
तजि, अत बसब तोहि नहिं सोहात॥

३

वानर जिमि गहि शावक विलारि,
अति प्रेम करत निज हिय विचारि।
नहिं छाडत जबलौं मर न जात,
सोई लच्छन तुमरो दिखात॥

४

जब से निज दल युत बसे आय,
श्री नष्ट भई अति बढ्यो ताप।
जन प्रेम एकता गई दूर,
निसदिन रोवत यह हिय विसूर॥

५

परतहिं तुम्हरो पग देस हाय ,
वन बैठो भारत शुष्क काय ।
धन, अन्न, पुरुष, विद्या, विहीन ,
ह्वै गयो दीन अरु पराधीन ॥

६

कहुँ प्लेगरूप कहुँ गरु अकाल ,
कहुँ राजनीति में पाँव डाल ।
यह विधि कलपावत आर्य वंश ,
रे निठुर तोहि नहिं दया अंश ॥

७

हम विनवत तोहिमन वारम्वार ,
जिन कर दुखियन ऊपर प्रहार ।
ह्वै रहे विपति फँसि जे अधीर ,
का लाभ तिनहिं पुनि दिये पीर ॥

८

मम भारत को सीधो सुभाव ,
अब याको तजि कहुँ अत जाव ।
यह प्रीति न तुव सँग करन जोग ,
ताते चाहत अब तव वियोग ॥

९

इंगलैंड जर्मनी आदि देश ,
तिनमें न करत क्यों तुम प्रवेश ।
याही के हित का जनम तोर ,
ह्वै गयो कुटिल कुत्सित कठोर ॥

१०

वहु विनती कर-कर गए हार,
तजि भारत गवनहु सिन्धु पार।
यहि में भल तुमरो अरु हमार,
न तु अवस बढैगो हिय विकार॥

११

वस, अत कहव हम एक बात,
तुमरो करतब नहिं सह्यो जात।
अबहूँ अपने जिय समुझ लेहु,
कहुँ जाहु, आपनी राह लेहु॥

माधव शुक्ल—प्रयाग

भारत माता

(राष्ट्रीय गीत)

जय जय भारत माता !

तेरा बाहर भी घर-जैसा रहा प्यार ही पाता ॥

ऊँचा हिया हिमालय तेरा,

उसमें कितना दरद भरा।

फिर भी आग दबाकर अपनी,

रखता है वह हमें हरा।

सौ सोतों में फूट-फूटकर पानी टूटा आता ॥

जय जय भारत माता !

कमल खिले तेरे पानी में,

धरती पर हैं आम फले।

उस धानी आँचल में आहा,

कितने देश-विदेश पले।

भाई-भाई लड़े भले ही, टूट सका क्या नाता ॥

जय जय भारत माता !

तेरी लाल दिशा में ही माँ,

चन्द्र-सूर्य चिरकाल उगे।

तेरे आँगन में मोती ही,

हिल-मिल तेरे हम चुगें।

सुख बढ़ जाता, दुख घट जाता, जब वह है बँट जाता ॥

जय जय भारत माता !

तेरे प्यारे बच्चे हम सब,

बन्धन में वह बार पड़े,

किन्तु मुक्ति के लिए यहाँ हम,

कहाँ न जूझे, कब न लड़े।

मरण शान्ति का दाता है, तो जीवन क्रान्ति-विधाता ॥

जय जय भारत माता !

मैथिलीशरण गुप्त

भारत माता

(राष्ट्रीय गीत)

माता सी प्रिय भारत माता !

तुल सकता इसकी तुलना में,
कैसे और किसी का नाता ?
जन्म दिया निज तनु-तत्वो से,
पालन किया सकल सत्वो से,
लिया हमें आजन्म अक में,

विशद वेद-वाणी की दाता।
माता-सी प्रिय भारत माता !

अग्रज अनुज अतुल उपजाये,
सती सुता, सज्जन सुत पाये,
दिग्विजयी विज्ञान-विशारद,

विश्रुत ब्रह्मज्ञान के ज्ञाता।
माता सी प्रिय भारत माता !

क्या समता इसकी ममता की।
अमित कथा इसकी क्षमता की।
भव्य भावना भरित विभूपित,

विभव विभूति अभय भय-त्राता।
माता-सी प्रिय भारत माता !

वचित है इसके प्रसाद से,
तज सच्ची सेवा, प्रमाद से
कर असहाय हाय ! जननी को,

जन-जन कौन नहीं दुख पाता।
माता-सी प्रिय भारत माता !

"एक राष्ट्रीय आत्मा"

वह देश कौन सा है ?

वह देश कौन-सा है ?

मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है।
सुख स्वर्ग सा जहाँ है, वह देश कौन सा है ?

जिसका चरण निरन्तर रत्नेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन-सा है ?

नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना, वह देश कौन-सा है ?

जिसके बडे रसीले फल, कन्द, नाज, मेवे।
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन-सा है ?

जिनमें सुगन्धवाले, सुन्दर प्रसून प्यारे।
दिन-रात हँस रहे हैं वह देश कौन-सा है ?

मैदान, गिरि, वनों मे हरियालियाँ लहकती।
आनन्दमय जहाँ है, वह देश कौन-सा है ?

जिसकी अनन्त धन से धरती भरी पडी है।
संसार का शिरोमणि, वह देश कौन-सा है ?

सबसे प्रथम जगत् में जो सभ्य था यशस्वी।
जगदीश का दुलारा, वह देश कौन-सा है ?

पृथ्वी निवासियों को जिसने प्रथम जगाया—
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौन-सा है ?

जिसमें हुए अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी।
गौतम, कपिल, पतंजलि, वह देश कौन-सा है ?

छोडा स्वराज तृणवत् आदेश से पिता के।
वह राम थे जहाँ पर, वह देश कौन-सा है ?

नि स्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई भले जहाँ थे।
लक्ष्मण - भरत सरीखे, वह देश कौन-सा है ?

देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थी।
माता पिता जगत् का, वह देश कौन-सा है ?

आदर्श नर जहाँ पर थे वाल ब्रह्मचारी।
हनुमान, भीष्म, शकर, वह देश कौन-सा है ?

विद्वान, वीर, योगी, गुरु राजनीतिको के।
श्रीकृष्ण थे जहाँ पर, वह देश कौन-सा है ?

विजयी वली जहाँ के वेजोड सूरमा थे।
गुरु, द्रोण, भीम, अर्जुन, वह देश कौन-सा है ?

जिसमें दधीचि दानी हरिचन्द्र, कर्ण - से थे।
सव लोक का हितैषी, वह देश कौन-सा है ?

वाल्मीकि, व्यास ऐसे जिसमें महान कवि थे।
श्री कालिदास वाला, वह देश कौन-सा है ?

निष्पक्ष न्यायकारी जन जो, पढे-लिखे है।
वे सव वता सकेंगे, वह देश कौन-सा है।

है कोटि-कोटि भाई सेवक सपूत जिसके।
भारत सिवाय दूजा, वह देश कौन-सा है ?

रामनरेश त्रिपाठी

झण्डा-वन्दना

एक हमारा ऊँचा झण्डा, एक हमारा देश ।
इस झण्डे के नीचे निश्चित एक अमिट उद्देश ।।

हमारा एक अमिट उद्देश ।

देखा जागृति के प्रभात में एक स्वतन्त्र प्रकाश ,
फैला है सब ओर एक-सा एक अतुल उल्लास ।
कोटि-कोटि कठों में कूजित एक विजय-विश्वास ,
मुक्त पवन में उड उठने का एक अमर अभिलाष ।
सबका सुहित, सुमंगल सबका, नहीं वैर-विद्वेष ,
एक हमारा ऊँचा झण्डा, एक हमारा देश ।।

कितने वीरो ने कर-करके प्राणो का बलिदान ,
मरते-मरते भी गाया है इस झण्डे का गान ।
रक्खेंगे ऊँचे उठ हम भी अक्षय इसकी आन ,
चक्खेंगे इसकी छाया मे रस-विष एक समान ।
एक हमारी सुख-सुविधा है, एक हमारा क्लेश ,
एक हमारा ऊँचा झण्डा एक हमारा देश ।।

मातृभूमि की मानवता का जागृत जयजयकार ,
फहर उठे ऊँचे-से-ऊँचा यह अविरोध, उदार ।
साहस अभय और पौरुष का यह सजीव संचार ,
लहर उठे जन-जन के मन में सत्य अहिंसा प्यार ।
अगणित धाराओं का संगम मिलन-तीर्थ-सन्देश ,
एक हमारा ऊँचा झण्डा, एक हमारा देश ।।

सुनें सब—एक हमारा देश ।

सियारामशरण गुप्त

जय राष्ट्रीय निशान

जय राष्ट्रीय निशान ,
जय राष्ट्रीय निशान ।
जय राष्ट्रीय निशान ।।

लहर-लहर तू मलय पवन में ,
फहर-फहर तू नील गगन में ,
छहर-छहर जग के आँगन में ,
सबसे उच्च महान ।
सबसे उच्च महान ।
जय राष्ट्रीय निशान ।।

बढे शूर-वीरो की टोली ,
खेलें आज मरण की होली ।
बूढे और जवान ।
बढे और जवान ।
जय राष्ट्रीय निशान ।।

मन में दीन-दुखी की ममता ।
हममे हो मरने की क्षमता ।
मानव-मानव मे हो समता ,
धनी गरीब समान ,
गूंजे नभ से तान ।
जय राष्ट्रीय निशान ।।

तेरा मेरु-दण्ड हो कर में ,
स्वतन्त्रता के महासमर में ।
वज्रशक्ति बन व्यापे उर मे ।।
दे दे जीवन-प्राण ,
दे दे जीवन-प्राण ।
जय राष्ट्रीय निशान ।।

सोहनलाल द्विवेदी

कौमी गीत

दावा है हर आन हमारा
सारा हिन्दुस्तान हमारा

जंगल और गुल्ज़ार हमारे,
दरिया और कुहसार हमारे।
कुएँ और बाजार हमारे,
फूल हमारे, खार हमारे।
हर घर हर मैदान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा॥

गो नहीं इसमें फौजी कुव्वत,
फिर भी बहुत है दिल में हिम्मत।
और हमारे साथ है कुदरत,
अब कोई ताकत कोई हुकूमत।
रोक तो दे तूफान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा॥

हमसे भारत की रौनक है,
आज़ादी दिन रात सबक़ है।
अपनी धनक है अपनी शफक है।
हर ज़र्रे पर अपना हक़ है।
खेत अपने दहकान हमारा॥

हिन्द का मालिक हर हिन्दी हो,
सिर्फ यहाँ एक कौम बसी हो।
बार न पाये ग़ैर कोई हो,
चाहे वह खुद अपनी खुदी हो।
देख ज़रा अरमान हमारा,
सारा हिन्दुस्तान हमारा॥

सागर निज़ामी

एकता गीत

मेरी जाँ न रहे मेरा सर न रहे,
सामा न रहे न ये साज रहे
फकत हिन्द मेरा आज़ाद रहे
मेरी माता के सर पर ताज रहे।

सिख, हिन्दू, मुसलमाँ एक रहें,
भाई-भाई सा रस्म रिवाज रहे।
गुरु-ग्रन्थ कुरान-पुरान रहे,
मेरी पूजा रहे औ नमाज़ रहे।

मेरी टूटी मड़ैया मे राज रहे,
कोई गैर न दस्तन्दाज़ रहे।
मेरी बीन के तार मिले हो सभी,
इक भीनी मधुर आवाज रहे।

ये किसान मेरे खुशहाल रहें,
पूरी हो फसल सुख-साज रहे।
मेरे बच्चे वतन पै निसार रहे,
मेरी माँ बहिनो की लाज रहे।

मेरी गायें रहे, मेरे बैल रहें,
घरघर में भरा सब नाज रहे।
घी-दूध की नदियाँ बहती रहें,
हरसू आनन्द स्वराज रहे।

माधो की है चाह खुदा की कसम,
मेरे बादे वफात ये बाज रहे,
खादी का कफन हो मुझ पै पडा,
'वन्दे मातरम्' अल्फाज रहे।

माधव शुक्ल

वन्दना के इन स्वरो मे

वदना के इन स्वरो मे,

एक स्वर मेरा मिला लो,
वदिनी माँ को न भूलो।
राग मे जव मत्त झूलो॥

अर्चना के रत्न कण मे,

एक कण मेरा मिला लो,
जव हृदय का तार बोले।
शृखला के वन्द खोले॥

हो जहां वलि शीश अगणित,

एक सिर मेरा मिला लो।

मोहनलाल 'द्विवेदी'

स्वतन्त्रता

(हिन्दी प्रदीप)

हे स्वतन्त्रता प्यारी तू क्यो हमको इतना बिसर गई ।
भारत छोड किधर को भागी हमको इकला छोड गई ॥

ईश्वर पुत्री जग की प्यारी गुण की आगर कहाँ गई ।
हाय हाय कह रोवैं भारतवासी तेरा नाम लई ॥

जीवन फुलवारी की तूही तो इक पुष्प सुगन्धित है ।
तेरे विन यह सूनसान है जग सुख सारा खण्डित है ॥

किसी भाँत को रोक टोक जव मनुष्य के चित पर रहती है ।
र्नाहि कभी काम कर सक्ता पूरा जिसमें तवियत लगती है ॥

विद्या वुद्धि शिल्प अरु सूनृत का कदापि र्नाहि वास वहाँ ।
सवही गुण इक इक कर भागैं स्वतन्त्रता है नही जहाँ ॥

जैसा की एक छोटा पौवा दव कर नही उभडता है ।
वैसा ही यह चित्त मनुष्य का उठै नही जव गिरता है ॥

पर वे वीर सही हैं जो गिर कर भी र्नाहि हुये निरास ।
कमर वाँव लडने पर तत्पर एक शस्त्र रख केवल आस ॥

प्रकृति ने यह ढग रचा है जीव सभी होवैं स्वाधीन ।
उस्की देन मर्वाहि को एकमाँ क्या धनाढच अरु क्या धन हीन ॥

हेमाचल के पर्वत पर अरु महरा के भी जगल में ।
सर्वाहि ठौर भोजन को मिलता सर्वाहि कटै सुख मगल में ॥

ईश्वर की ममम्त रचना में ऐमा कोई स्थान नही ।
जहाँ श्रमी उद्योगी को है जोवन का मामान नही ॥

यदि विपत्ति अरु काल कही पर कभी दिखाई पड़ते है ।
एक मूल उनका अधीनता जिनसे सबही डरते है ॥

एकहि भांत मनुष्य है आये उन्ही भांत वे जाते है ।
समदर्शी निर्गुण के आगे सब समान दिखलाते है ॥

तब किसको अधिकार कहै यह हम धनाढ्य अरु धन हीन ।
औरो के कर्मों को रोकै देन प्राकृतिक लेवै छीन ॥

(क्याही अद्भुत वस्तु मनुष्य भी श्रेष्ठ कहावै सृष्टी मे ।
पर भरे हुए है ऐगुण इतने जो नहि देखे पशुओ में ॥

नही कभी एक घोडा कहता मेरी मूल्यवान है जीन ।
गर्व नही उसको यह होता मेरा चमडा है रंगीन ॥

यदि घमण्ड वह करता है तो केवल अपनी तेजी का ।
पर हाय नीचता मनुष्य की कैसी अभिमानी धनसपति का ॥

एक एक के गुण नहि देखै ज्ञानवान् का नहि आदर ।
लडै कटै धन पृथ्वी छीनै जीव सतावें लेवै कर) ॥

भई दशा भारत की कैसी चहुँ ओर विपदा फैली ।
तिमिर अज्ञान घोर है छाया स्वारथ साधन की शैली ॥

हा यही भूमि यह आरज की जहँ भये एक से एक सुवीर ।
जहाँ कपिल पातजलि उपजे द्रोणा अर्जुन सम रणवीर ॥

जहाँ धर्म में प्रौढ युधिष्ठिर राम वासुदेव हरिचन्द ।
व्यास वाल्मीक से कितने उपजे श्रेष्ठ कविन के वृन्द ॥

जहाँ भक्त गौतम शकर ने अद्भुत छटा दिखाई ।
जहाँ भोज विक्रम के यश ने रही सुपश छाई ॥

है भई दशा वही भूमि की हाय आज कैसी न्यारी ।
विद्या गुण तो घटते जाते पर अभिमान रहा भारी ॥

अपनी अपनी चाल ढाल को सब कोउ घर घर छप्पर पर ।
चले ढुलकते बुरी प्रथा पर जिसका कही पैर नहिं सर ॥

धनी दीन को दुख अति देते हमदरदी का नाम नही ।
धन मदिरा गनिका में फूकैं करै भला कुछ काम नही ॥

कभी कभी मशोधक होने का यदि किसी को आया ध्यान ।
समझ लिया एक स्पीच झाडना है वस मेरा पूरा ज्ञान ॥

लोग नही उनको पतियाते सच पूछो तो बात यही ।
देश उपकार करैगा वह क्या जिसका मन है विमल नहीं ॥

ऐसी भूमि में हे स्वतन्त्रता हो नहिं सक्ता तेरा बास ।
जहाँ कुटिल अरु नीच प्रकृत हो वने सभी स्वारथ के दास ॥

तेरे रहने को हे प्यारी उज्ज्वल हृदय भवन चहिये ।
तो भी दशा देख भारत की अव तो दया दृष्ट करिये ॥

भरा स्वार्थ से हृदय हमारा दीजै हमको दान यही ।
तेरी मूर्ति मोहनी प्यारी रहै सदा चित माँहि वसी ॥

जिसे देख देखकर मुझ में वल अरु साहस अधिक बढै ।
कि तेरा गुण मैं जग मे गाऊँ जिससे भारत कष्ट कढै ॥

पुरुषोत्तमदास टंडन

सच्चा साधु

(हिन्दी प्रदीप)

तन मन से जो पर कारज में अपना जन्म बिताता है ।
पुनि स्वदेश बंधुन प्रसन्न लखि जिसका दिल हरषाता है ॥

प्यारी जन्मभूमि की दुर्गति जिससे सही न जाती है ।
अपने पुरुषों के यश की सुध जिसको सदा सुहाती है ॥

जो 'स्वदेश' की मूरखता पर क्षण भर चैन न पाता है ।
लोगों के आलसी हृदय में जो उत्साह बढ़ाता है ॥

निज भाई सम जान सबों को सत उपदेश सुनाता है ।
अरु कुपथ से तिन्हें बचाकर धर्म राह ले जाता है ॥

जो 'स्वदेश' हित दुष्ट जनों की गाली भी सह लेता है ।
उनकी निन्दित बातों की भी ओर ध्यान नहिं देता है ॥

जिसके हृदय लोभ, स्वारथ, का रंचक भी लवलेश नहीं ।
आत्मीयता देश बन्धुन संग कितनी, जिसका शेष नहीं ॥

सोते जगते खाते पीते यही सोच जिसको भारी ।
किस विधि 'भारत' में 'स्वतन्त्रता' होवे सुद मंगलकारी ॥

जिसके लिए नरक भी सुखकर, अनुचित कारागार नहीं ।
अरु 'स्वदेश' हित प्राण त्यागने में भी कुछ इन्कार नहीं ॥

जिसने यह दृढ़ ठान लिया है, 'कुछ हो कष्ट उठावेंगे ।
पै दुर्दशा ग्रस्त भारत को उच्चासन बैठावेंगे ॥

गर्व रहित हो इस प्रकार से निज कर्तव्य दिखाता है ।
वही धन्य अरु पृथ्वी तल पर, "सच्चा साधु" कहाता है ।

माधवप्रसाद शुक्ल

त्राहि त्राहि शिव

(हिन्दी प्रदीप)

हाय आज यह देश विकल हो दुख से पीड़ित ।
टेरत है हे नाथ–त्रिलोचन ! आन दयाचित ॥ १ ॥

डूबे हम सब हाय ! महा दुख सागर माही ।
त्राहि त्राहि, शिव ! त्राहि तोहि बिन दूसर नाही ॥ २ ॥

हे शिव काशीनाथ ! हरो दुख हम दीनन के ।
सुख सपत्ति नित बढे, सुविद्या बुध भारत के ॥ ३ ॥

नावत है हम माथ, अहो गौरी पति तुमको ।
दुख से देहु उबार, बचाओ इस भारत को ॥ ४ ॥

१

रूप विराट ललाट सुसुन्दर तापर भाल त्रिपुड विराजै ।
गौर शरीर लसै उपवीत रमाय बभूत मनोहर छाजै ॥
कठ सुशोभित नील अहा, अरु तापर सर्प अनेकन भ्राजै ।
शीश मनोहर श्याम जटा पर गग मनोहर ही छवि साजै ॥

२

हाथ लसै तिरसूल, घने डमरू उनके मुनि पातक भागे ।
डाकिन शाकिन, भूत पिशाचन वीर अनेकन नाचत आगे ॥
लोचन काल महा विकराल निहारत ही दुख दारिद भागे ।
पादुका शब्द त्रिलोचन के मुनि लोचन भारत मोद में पागे ॥

३

आर्त अहा हमरी विनती सुन मकर देव महा वरदानी ।
निश्चय ईश कृपालु महान अहै करुणा कर नाथ भवानी ॥
आकुल भारत की विनती सुनि रच विलम्ब अहो , नहि आनी ।
शंभु ! उदार दयालु उमापति , टेरत भारत आरत बानी ॥

४

प्लेग नसै कुमती जरि के दुख दारिद भी जरि के हट जावे ।
भाग अकाल पताल चले सुख संपति भारत में चहुँ धावे ॥
नाथ ! अनाथ सनाथ करो, कर जोरि के भारत माय नवावे ।
"है" "तिरलोचन" 'लोचन' को "जनि लोचन ओट करौ" सिर नावे ॥

लोचनप्रसाद पाण्डेय,
बालपुर ।

मानव

(वैश्योपकारक सवत् १९६१ श्रावण)

१

वीत गयो भीषम ग्रीपम अस आयो सावन ।
जस केराज के गए नृपति कोउ मोद बढावन ॥
हरित भूमि चहुँ ओर मोर बोलत सुख पाके ।
जनु नृप जय जय कार करत परजा हरपा के ॥

२

जद्यपि है घनघोर घटा पै थम थम बरसत ।
जस विभूति सम्पन्न रूम दल बल हि न परसत ॥
कटक कटक चपला चमकत मेघन पर छिन छिन ।
जिमि जापानी तोप खड्ग रिपु मारत गिन गिन ॥

३

धारा पात प्रहार सहत हैं गिरिगन ऐसे ।
रूसी दल की वाढ वीर जापानी जैसे ॥
दादुर वोलत चहुँ दिसि मे झीगुर झकारे ।
जनु जपान की विजय गीति सव पत्र उचारें ॥

४

उमडि वेगसी नदिन पुरातन विरछ उखारे ।
जनु वृटीश वाहिनिन तिव्वतीगन सहारे ॥
जल प्रवाह ही रोक सके नहिं कल करारे ।
तिव्वतीय पथ में दिवार करि जम सव हारे ॥

५

मोम मूर्य मव छिपै तेज नहि देत दिखाई ।
जस भारत के वीरत्वम निजना विमराई ॥
अन्धकार को राज काज कछु किया न जावे ।
जम कलि के परताप पुण्य फैलन नहि पावै ॥

राधाकृष्ण मिश्र, भिवानी

भारत विलाप

(स्वदेश बान्धव जून १९०५)

१

वूड़त राखि लयो गजको, हनि ग्राह सनेह के साज सजोये।
नाम "हरी" के पुकारत ही तुम जाय सबै दुख कटक खोये।।
दीन-दशा लखि के भरि आवत आँसुनसो नित नैनन-कोये।
भारत आरत आपकी हाय! कहाँ इतने करुणानिधि सोये।।

२

विश्व शिरोमणि भारत जो वह दीन मलीन रहीन भयो ये।
प्लेग अकाल दुकाल को कष्ट न जात दयानिधि हाय नह्यो ये।।
सभ्य समाज चल्यो अगुआ बनि घोही पिछार निहारि रह्यो ये।
मींचिके आँखि मलै सुख नीद कहाँ करुणानिधि डाटिकै मोये।।

३

कोमल जो नव फूल खिले हिय बेधि विधे! दुख-तार पिरोये।
देश दरिद्र दुखी फिर हू तुम ताहू पै कौन नमा महिं भोये।।
विप्र सुदामा को हेरि इतो अपनो जन जानि दयानिधि रोये।
भारत गारत हेरि कितै करुणा तजिकै करुणानिधि मोये।।

४

नामहि लेत धुरू प्रहलादरु द्रौपदि के दुख धायके धोये।
वेद पुराण पुकारत, तारत, टारत भक्त-त्रितापनि जोये।।
टेरते आरत गारत भारत "माधव माधव" अश्रु विगोये।
नाम धरायलयो करुणानिधि भाजि कहाँ करुणानिधि सोये।।

५

लीजिये चीर हृदयहि को लखि लीजिये वीज सनेह के वोये।
जाउ वढे कोउ काऊसी वातन नेह के पथ अगार रह्यो ये॥
प्रेम के फद फस्यो तव नाथ! सिरे सवरे जग सकट ढोये।
भूलि के भारत के हिय सूल कहाँ करुणा वरुणालय सोये॥

६

टेरत हेरत हाय! हरे, रसना रसनामधि आज रह्यो ये।
कातर कठ वनेन गुहारत कष्ट कठोरन जात कह्यो ये॥
जाही सो हे शरणागत वत्सल! भारत आसरी आप लयो ये।
तानि पितम्वर पायन लो भरि नीद कहाँ करुणानिधि सोये॥

७

काहू की वेर नृसिंह वराह रु वामन रूप हँसे मधु रोये।
काहू की वेर को राम हरी घनश्याम जू लै अवतार सँजोये॥
काहू की वेर उराहने पायन आतुर भाजि सवै दुख खोये।
भारत वेर अवेर करी तुम हाय कहाँ करुणानिधि सोये॥

८

रैन दिना कलि नाहि परै अजहूँ तुम केशव नीद में भोये।
दुख के जालहि लेहु समेट जो भारत में चहुँ ओर विछोये॥
जोरि निहोरि कहें सतदेव दया करि नाथ जू! टेर सुनोये।
काहे के हो करुणानिधि जू जव कानन दे अँगुरी तुम सोये॥

सत्यनारायण, धाधूपुर–आगरा

शिव भारत

(स्वदेश बान्धव—मार्च १९०६)

पूरव पच्छिम घाट चरण मुद मगलकारी ।
विन्ध्याचल कटि देस नाभि माभर दुखकारी ॥

उर सम्मिलित प्रदेश वग राजस्थल भावत ।
मुख मडल कशमीर ग्रीव पजाब सुहावत ॥

तपत भानु-नव किरण-माल सुभ सुभग विराजत ।
हेम वरण हिम चन्द्र भाल धवलागिरि भ्राजत ॥

सघन तरुन की अवलि जटिल अति जटा सँवारत ।
हिम मय स्वेत सुरग सकल भव ताप निवारत ॥

ब्रह्म श्याम अरु यवन देश युग भुजा पसारत ।
मार-उछाहहिं मारि क्रोध परलय परचारत ॥

हिमगिरि सिरसो गग पुण्य परवाह प्रवाहत ।
सत्यदेव अस शिव भारत सो आनद चाहत ॥

सत्यनारायण, धाधूपुर—आगरा

मातृ-वन्दना

(स्वदेश वान्धव—अप्रैल १९०६)

है अनन्त प्रणाम मेरा, उसके चरणो में सदा ।
जन्म दे जिसने बढाया मुझे सहकर आपदा ॥

सावधानी मोरे हित जिसने, अहा की सर्वदा ।
व्याधि और असख्य रोगो से बचा करके सदा ॥

शीत वर्षा और गर्मी से की रक्षा जो नित ।
लौ लगायें रही मेरी ओर जो सुख दुख मे चित ॥

जी है मेरौ पुज्य प्रिय जग के जनो में से महा ।
और है परमार्थ जिसमें रच स्वार्थ न है अहा ।

मुझको भापा और बोली ज्ञान भी सिखला दिया ।
दे सुशिक्षा जिसने मेरी वुद्धि को निर्मल किया ॥

लोचनप्रसाद पाण्डेय, वालपुर

हिन्द-वन्दना

(स्वदेश बान्धव फरवरी १९०७)

जय जय अनादि अनमधि अनन्त, जय जय जगवन विकसत वसन्त ।
जय जय अच्युत अनवधि अवार, जय जय जग नाटक-सूत्रधार ।
जय जय सुन्दर सुखमा रसाल, जय जय शरणागत प्रणतपाल ।
जय जय धुरीण धृति धर्म्म एन, जय जय जगदीनहि दान दैन ।
जय जय जग-वन्दन पारिजात, जय जय दश दिशि वन्दन प्रभात ।
जय जय थल श्यामा श्याम केलि, जय जय सुखधामा प्रेम-वेलि ।
जय जय जग प्रचुर पुनीत काय, जय जय अमान नित मान पाय ।
जय जय विनोद सुरसरी स्रोत, जय जय श्रीवर विद्युत उदोत ।।
जय जय अथाह सत्यानुराग, जय जय प्रवाह पूरण प्रयाग ।
जय जय चचल मन नहिं धरीक, जय जय प्रभु चरणन चचरीक ।
जय जय अकाम नित न्याय धाम, जय जय जगकर शोभाभिराम ।
जय जय दयार्द्र प्रेमाश्रुपूर, जय जय करन सग नित अकूर ।।
जय जय विशेष विद्वल्ललाम, जय जय अशेष वल पूर्ण काम ।
जय जय प्रधान सब गुण निधान, जय जय प्रवीण मगलविधान ।
जय जय पतिव्रता पुण्य-पाति, जय जय अकलक समस्त भाँति ।
जय जय परिपूर्ण ब्रह्मनिष्ट, जय जय भवरुज चूरण वलिष्ठ ।
जय जय अभीष्ट आनन्द कन्द, जय जय उल्लास अमन्द-चन्द ।
जय जय मञ्जुल जग हृदय-माल, जय जय जगमग जग ज्योति जाल ।
जय जय मनमोहन सौम्य रूप, जय जय कछु कोह, न विश्व भूप ।
जय जय जग उज्जल नवल रत्न, जय जय उदार साधन प्रयत्न ।
जय जय निश्चल निष्कपट नेम, जय जय दम्पति अति शुद्ध प्रेम ।
जय जय सुन्दर सद्धर्म - सार, जय जय जग-सतगुरु सब प्रकार ।
जय जय अव्यक्त अविचल सुधार, जय जय वसुधा मधि सुधाधार ।
जय जय सुखमय सानन्द सद्म, जय जय प्रमोद प्रस्फुटित पद्म ।
जय जय ललाट हिम शैल श्रृग, जय जय मधुलोलुप मुकुट भृङ्ग ।

जय जय चिन्तामणि चन्द्रकान्ति, जय जय प्रशस्त पावन प्रशान्ति ।
जय जय कल कठ निनाद गान, जय जय द्विज गो - पालक महान ।
जय जय मुकलाधर धरा इन्दु, जय जय पद पद पीयूप विन्दु ।
जय जय कल कान्ति कला कलोल, जय जय अमोल अति ललित लोल ।
जय जय अद्भुत आभा अखण्ड, जय जय मरकत मणि - मार्तण्ड ।
जय जय वसुन्धरा - छवि अछुद्र, जय जय जग वाछा सरि समुद्र ।
जय जय महर्पि यशनिचय थम्व, जय जय समस्त जगतावलम्ब ।
जय जय प्रताप प्रगदत प्रदीप, जय जय महि मण्डल मखमहीप ।
जय जय अभिमत प्रद कामधेनु, जय जय जग मृग हरन वेनु ।
जय जय करुणा कमनीय कुञ्ज, जय जय प्रिय पावन प्रणयपुञ्ज ।
जय जय रसिया हिय सरल शान्त, जय जय जग रुचि कामिनी कान्त ।
जय जय राखत निज वचन टेक, जय जय त्यागत नहिं धर्म एक ।
जय जय हिय कोमल वलअमेय, जय जय निर्भय भीपण अजेय ।
जय जय निशक निर्द्वन्द वीर, जय जय ध्रुवसम ध्रुव अचल धीर ।
जय जय रिपुरण नहिं पीठ देन, जय जय धनेश मदलेश, पै, न ।
जय जय पराक्रमी मनहु विष्णु, जय जय साधारण मन सहिष्णु ।
जय जय गुणगुण गौरव असीम, जय जय कराल सग्राम भीम ।
जय जय जय ककन कर विशाल, जय जय प्रगल्भ रणशत्रु साल ।
जय जय प्रण पूरण भरत खण्ड, जय जय अरि दल नाशन प्रचण्ड ।
जय जय खल गन्जन विदित जक्त, जय जय मन रञ्जन राजभक्त ।
जय जय त्रिभुवन विख्यात देश, जय जय अपूर्व अतुलित अशेप ।
जय जय नित निरमल नय निकुञ्ज, जय जय पपिया 'पिय पिया गुञ्ज ।
जय जय आर्य्ज कुल-कीर्त्ति केतु, जय जय अनगढ दृढ वेद सेतु ।
जय जय जग जीवन जन अनन्य, जय जय धीरज धन धन्य धन्य ।
जय जय अनभव अमलारविन्द, जय जय सदैव सतदेन हिन्द ।

वीर-बालक

(श्रीकान्यकुब्ज हितकारी—फरवरी १९१४)

१

चीर योनि चित्तौर धरित्री हाय ! आज हो रही विपन्न,
उसके उस स्वातन्त्र्य रत्न का सर्वनाश अव है आसन्न।
है मिट्टी में मिला चाहती उसकी यह सत्कीर्त्ति पवित्र,
दृष्टि ! किस तरह देखेगी तू यह कठोरतर भीषण चित्र ॥

२

वचे हुए भारत-गौरव का आज हाय ! क्या होगा अन्त,
चढ आया है वीर भूमि पर अकवर लेकर सैन्य अनन्त।
उदयसिंह छिप गया कही है होकर भीत मृत्यु से हाय,
प्यारी जननी जन्मभूमि की कौन करेगा आज सहाय ?

३

शूर श्रेष्ठ विज्ञवर जयमल अपनी मातृभूमि के हेतु,
अमर हो चुके हैं तनु तजकर होकर धीर वीर कुल केतु।
भारत की आशा का भी क्या हो जावेगा आज निपात ?
क्या चुपचाप सभी देखेंगे निज स्वतन्त्रता का अभिघात।

४

देखो, अहा ! वीर वालक वह तेजस्वी वल वीर्य निकेत,
रण में जाने को उद्यत है हर्ष और उत्साह समेत।
होकर सज्जित समरवेश से प्रमुदित होता हुआ विशेष,
पहुँचा माँ के निकट शीघ्र वह लेने को उसका आदेश॥

५

"आशीर्वाद दीजिए हे माँ ! करने की स्वदेश का त्राण,
विचलित होऊँ नही युद्ध से निकल जायें चाहे ये प्राण" ।
धन्य वीर बालक प्रताप का सुनकर यह अत्युच्च विचार,
माँ का कण्ठ हो गया गद्‌गद् करके प्राप्त प्रमोद अपार ॥

६

अपने एक मात्र उस सुत को भारत गौरव के रक्षार्थ,
रण में जाने की माँ ने यो दिया निदेश त्याग कर स्वार्थ ।
ईश्वर मगल करे तुम्हारा जाओ रण मे वत्स सहर्ष,
वही काम करना तुम जिससे मातृभूमि का हो उत्कर्ष ।

७

माँ के पदपद्‌मो को छूकर धारण कर उल्लास अनन्त,
तीर वेग से निकल वहाँ से पहुँचा वह रण मध्य तुरन्त ।
उस षोडश वर्षीय वीर की यह अपूर्व निर्भयता देख,
बढे हुए उत्साह शौर्य से उत्साहित सब हुए विशेष ॥

८

फिर सेना नायक के पद पर होकर सस्थित वीर प्रताप,
मातृभूमि के उन रिपुओ को देने लगा तीक्ष्ण सन्ताप ।
उस बालक का शौर्य देखकर होकर महाश्चर्य मलीन,
सम्राट् अकबर जय आशा से अकस्मात् हो गया विहीन ॥

९

लगी उगलने गोले तोप करके भीषण नाद नितान्त,
प्रबल शत्रुओ का साहस वे करने लगी शीघ्र ही शान्त ।

उत्साही प्रताप को पाकर स-प्रताप हो सैन्य समस्त,
करने लगी शत्रु सेना को निरुत्साह भय-चिन्ता-ग्रस्त ॥

१०

रिपु-निवनार्थ सवेग वहाँ पर लगा घूमने वह अविराम,
जिवर देखते थे, पाते थे, उसकी दिव्य दृष्टि अभिराम ।
उसका अद्भुत कार्य देखकर आती थी मन में यह वात,
वीर षडानन कार्तिकेय ज्यो करते हो अरिवृन्द विघात ॥

११

आश्चर्यित करती थी सवको उसके तीक्ष्ण शरो की चाल,
पाकर उसका शर अनेक रिपु अन्य लोक पहुँचे तत्काल ।
आती हुई समक्ष गोलियाँ करके यह वाणो से व्यर्थ,
करने लगा नष्ट यवनो को मातृभूमि रक्षा के अर्थ ॥

१२

उसने रिपु के एक झुण्ड का कर डाला तुरन्त ही अन्त,
पर क्या हो सकता था इससे थी मुगलो की सैन्य अनन्त ।
एक और दल आगे वढकर शीघ्र आ डटा वहाँ सगर्व,
पर प्रताप ने उसका भी झट सारा गर्व कर दिया खर्व ॥

१३

निज सेना की दशा देख यह अकवर चिन्तित हुआ विशेष,
करने लगा साहसी उसको देकर वढने का आदेश ।
उसकी उत्तेजक वाणी से हुए मुगल अस्थिरता हीन,
अव की वार राजपूतो का होने लगा तेज कुछ क्षीण ॥

१४

इसी समय यह वीर नारियाँ धारण कर कठोर रण वर्म्म,
दुर्गस्थित हो लगी वेधने रिपुओ की सेना के मर्म्म ।

करती थी जो रण-कौशल से अरिगण का सब गर्व विमुक्त,
थी उनमे प्रताप की माता वधू और पुत्री सयुक्त ।।

१५

वीर गीत गाकर वे रमणी करके प्राणमोह को त्यक्त,
अपनी अतिशय प्रवल शक्ति को करने लगी वहाँ पर व्यक्त ।
माता, वहिन तथा पत्नी को वीर वेश मे वहाँ निहार,
पाने लगा प्रताप और भी हृदय वीच आनन्द अपार ।।

१६

थी यद्यपि मुगलो की सेना नभ की तारावली समान,
थी यद्यपि वह उपकरणो से सभी भाँति अतिशय वलवान ।
पर उन वीर नारियो द्वारा पाकर भीपण शस्त्र प्रहार,
विचलित वह हो उठी वहाँ फिर मानो मृत्यु समक्ष निहार ।।

१७

उनका वह वीरत्व देखकर अकवर मुग्ध हुआ अत्यन्त,
उसने यह अपनी सेना मे सव पर प्रकटित किया तुरन्त ।
"जो कोई ये तीन नारियाँ जीवित पकड लायगा आज,
जहांपनाह उसे देवेगे मनमाना धन दौलत राज" ।।

१८

पर उस समय हो गये थे लज्जा मे उन्मत्त समान,
बादशाह की इस वाछा पर दिया किसी ने जरा न ध्यान ।
होने लगा युद्ध अतिशय था वडे वेग मे दोनो ओर,
करते थे दिगन्त को घोपित रण सम्बन्धी शब्द कठोर ।।

१९

फिर भगिनी वीर प्रताप की करके विपुल शत्रु सहार,
प्राप्त हुई वीरो की गति को फैलाकर निज कीर्ति अपार ।

यो ही उस सुवीर की माता, पत्नी भी हत हुई निदान,
पर वह लडता रहा उसी विध रक्खे हुए धर्म पर ध्यान ॥

२०

यद्यपि क्षत्रिय अपने बल पर रखते थे पूरा विश्वास,
पर रिपुओ की विशालता ने उन्हे अन्त में किया निरास ।
तब उन सबकी वीर नारियाँ हो जौहर व्रत को तैयार,
भारत की सतीत्व महिमा पर करने लगी मुग्ध ससार ॥

२१

आगत हुई अँधेरी रजनी बन्द हुआ सग्राम कठोर,
रणक्षेत्र में पडे रह गये रुण्ड मुण्ड ही चारो ओर ।
इसी समय उस दिव्य दुर्ग में ज्वाल धधकने लगी कराल,
हँसती हुई सैकडो वधुएँ उसमें कूद पडी तत्काल ॥

२२

धन्य धन्य धक धक के मिष से कहकर अग्नि प्रकाश निधान,
उसी जगह को हीन, जगत को आलोकित कर उठी महान ।
आर्य धर्म की शुभ सजीवता, उस प्रकाश से विश्व समस्त,
लगा देखने आश्चर्यित हो गाकर उसकी कीर्ति प्रशस्त ॥

२३

छाया था सर्वत्र अँधेरा, थी अत्यन्त भयकर रात,
कितनी ही रमणी स्वधर्म पर थी कर चुकी शरीर निपात ।
बैठ गये तेजस्वी क्षत्रिय उद्घाटित कर दुर्ग द्वार,
करने लगे प्रतीक्षा दिन की जीवन का सब मोह बिसार ॥

२४

कुञ्चित सब उनके ललाट थे करने से गम्भीर विचार,
मातृभूमि पर मर जाने को प्रस्तुत थे वे भले प्रकार ।

उन्हें मोह था नही किसी का, थाती मातृभूमि का मोह,
उन्हे मृत्यु का सोच यही था, होगा हाय ! स्वदेश विछोह ॥

२५

आखिर वह महिमामय दुर्दिन आ पहुँचा, हो गया निशान्त,
रिपुओ से भिड जाने को वे उत्कठित हो उठे नितान्त ।
मातृभूमि के लिए मरेंगे यदपि उन्हें इसका था हर्ष,
उसकी भावी दशा सोचकर थे परन्तु वे कम न विमर्ष ॥

२६

सागर की लहरो सी वढकर वह मुगलो की सैन्य अशेष,
हाय ! हाय ! चित्तौर दुर्ग में साभिमान कर उठी प्रवेश ।
रोका उसे राजपूतो ने छाती अडा वहाँ सानन्द,
छक्के छुडा दिये रिपुओ के करके उसका वैभव मन्द ॥

२७

अति उत्साह समेत वहाँ फिर होने लगा घोर सग्राम,
कितने ही जन सदा काल को लेने लगे शीघ्र विश्राम ।
हट जाता है ज्यो पीछे को पत्थर से टकरा कर वाण,
पीछे हटने लगा उसी विध रिपु-सैनिक-समूह वलवान ॥

२८

वादशाह ने जव यह देखा क्षत्रिय हैं अपूर्व रण-धीर,
नहीं हरा सकता है इनको इस प्रकार कोई भी वीर ।
मत्त डेढ सौ हाथी उसने छुटवाये तव वहाँ तुरन्त,
और वढाई सेना आगे कर जय की आशा अत्यन्त ॥

२९

छूटा ज्योंही वह हाथीदल लगा रौंदने शत शत वीर,
प्रकृत वीर क्षत्रिय पर तौ भी रहे पूर्व से ही अति धीर ।

अव उनका वीरत्व और भी पाने लगा विशेष विकाश,
जिस प्रकार वुझने के पहले वढ जाता है दीप प्रकाश ॥

३०

वे हाथी भी उन शूरो की हानि नही कर सके विशेष,
छुडवाये तव गये और भी वहाँ तीन सौ मत्त गजेश ।
वीर क्षत्रियो की सेना का आ पहुँचा अव अन्तिम काल,
करने लगा शिथिल अव उसको वह सशक्त गजवृन्द विशाल ॥

३१

लडने लगे हाथियो से भी राजपूत जन शौर्य समेत,
मर्म स्थान विद्ध कर उनके लगे भेजने मृत्यु निकेत ।
पर स्वदेश रक्षण मे अव वे होने लगे सभी निरुपाय,
आखिर वे मनुष्य ही तो थे, पाते विजय कहाँ तक हाय ॥

३२

तव निज सुरीलियो के मम्मुख धार कर कर में करवाल,
देव मूर्तियो की रक्षा को खडे हो गये वे तत्काल ।
कैसे तजते रणक्षेत्र वे कव तक थे शरीर में प्राण,
त्राण उन्होने किया धर्म का जव तक नही हुए म्रियमाण ॥

३३

जव वीर प्रताप ने देखा अपनी सेना का यह हाल,
ज्वाल पूर्ण हो उठे क्रोध से तत्क्षण उमके नेत्र विशाल ।
झपटा त्वरित हाथियो पर वह करने को उनका अभिघात,
प्रकट सिंह शावक के समय वह हुआ उस समय सवको ज्ञात ॥

३४

एक झूमता हुआ मत्त गज था आ रहा सवेग समक्ष,
वह विनष्ट कर चुका वहुत था वीर राजपूतो का पक्ष ।

धावित होकर बडे वेग से करके उसका पथ अवरुद्ध,
शुण्ड छिन्न उसकी तुरन्त ही कर दी उसने होकर क्रुद्ध ।।

३५

करके भीमनाद वह हाथी पीछे लौट पडा तत्काल,
भेद दिया इस समय किसी ने शर द्वारा प्रताप का भाल ।
अकस्मात् के उस प्रहार से क्षिति पर वह गिर पडा तुरन्त,
उसे पकडने को अनेक अरि तत्क्षण दौड पडे हा हन्त ।।

३६

राजपूत तव खडे हो गये उसे घेर रक्षा के अर्थ,
इससे उसे पकडने मे रिपु नही जरा भी हुए समर्थ।
क्रमश अपनी अतुल शक्ति का होता हुआ देखकर ह्रास,
कहने लगा वचन तव वह ये लेकर एक दीर्घ निश्वास ।।

३७

पराधीन कर मातृभूमि को हाय ! विश्व में सभी प्रकार,
गमनोद्यत मैं हूँ पृथ्वी से है मुझको सहस्र धिक्कार ।
भूतल पर आते ही मेरा तत्क्षण क्यो हो गया न नाश,
तो क्यो मुझे देखना पडता राजपूत गौरव का ह्रास ।।"

३८

अथवा इसमे किसका वस है, है यह सव विधि के स्वाधीन,
यह भी अच्छा हुआ कि मेरा होता है अव जीवन क्षीण ।
अव न देखना मुझे पडेगा भारत का विशेप अपकर्प,
रहना पडे नरक मे चाहे अन्यलोक में लाखो वर्प ।।

३९

"मरता हूँ मैं यद्यपि रण में, है यह बडे भाग्य की वात,
देख रहा हूँ किन्तु इस समय भारत-महिमा का अभिघात ।

यह अनन्त निद्रा भी मुझको देगी नही शान्ति का लेश,
हा ! स्वतन्त्रता विना मृत्यु भी देती है दुख दाह अशेष ॥"

४०

"सूर्यदेव ! तुम भारत भू को जला क्यो नही देते हाय !
पर पददलित हो रही है यह होकर सब प्रकार असहाय ।
निज कुल के भी देख दुर्दशा हो कैसे तुम क्रोध विहीन ?
पुण्यभूमि यह आज हमारी है कैसी हा ! दीन मलीन ॥"

४१

बोल सका वह और न, तनु से बहने लगी रक्त की धार,
जा पहुँचा फिर स्वर्गवास मे वह अपूर्व गुण गरिमागार ।
जाओ वीर ! सहर्ष स्वर्ग मे, कैसे कहे, हाय, हम लोग ?
वीरभूमि परतन्त्र हो गई होते ही तव विषम वियोग ॥

सियारामशरण गुप्त

मातृ-भूमि

(सगीत सौरभ)

जन्म दिया माता-सा जिसने,
किया सदा लालन-पालन।
जिसके मिट्टी-जल से ही है,
रचा गया हम सबका तन॥
गिरिवर - गण रक्षा करते हैं,
उच्च उठा के शृंग महान॥
जिसके लता-द्रुमादिक करते,
हमको अपनी छाया-दान॥
माता केवल बालकाल में,
निज गोदी में रखती है।
हम अशक्त जब तलक तभी तक,
पालन - पोषण करती है।
मातृ - भूमि करती है मेरा,
लालन सदा मृत्यु-पर्यन्त।
जिसके दया - प्रवाहो का नहि,
होता सपने में भी अन्त॥
मर जाने पर कण देहो के,
इसमें ही मिल जाते हैं।
हिन्दू जलते, यवन, ईसाई,
दफन इसी में पाते हैं॥
ऐसी मातृभूमि है मेरी,
स्वर्गलोक मे भी प्यारी।
जिसके पद कमलो पर मेरा,
तन - मन - धन सब बलिहारी॥

पं० मन्नन द्विवेदी

प्रभात-फेरी

(सगीत सौरभ)

उठो सोने वालो, सवेरा हुआ है,
वतन के फकीरो का फेरा हुआ है।

जगो तो निराशा-निशा खो रही है,
सुनहरी सुपूरब दिशा हो रही है,
चलो मोह की कालिमा धो रही है,
न अव कौम कोई पडी सो रही है।

तुम्हें किस लिए मोह घेरे हुआ है ?
उठो सोने वालो, सवेरा हुआ है।

जवानो उठो, कौम की जान जागो,
पडे किम लिए देश की शान जागो,
तुम्ही दीन की आस-अरमान जागो,
शहीदो की सच्ची सुसन्तान जागो,

चलो दूर आलस अँधेरा हुआ है,
उठो मोने वालो, सवेरा हुआ है।

उठो देवियो, वक्त खोने न देना,
कही फूट के वीज वोने न देना,
जगें जो उन्हें फिर से सोने न देना,
कभी देश अपमान होने न देना,

मुसीबत से अव तो निवेरा हुआ है,
उठो मोने वालो, मवेरा हुआ है।

मातृ-भूमि

(सगीत सौरभ)

जन्म दिया माता-सा जिसने,
किया सदा लालन-पालन ।
जिसके मिट्टी-जल से ही है,
रचा गया हम सबका तन ॥
गिरिवर - गण रक्षा करते है,
उच्च उठा के शृग महान ॥
जिसके लता-द्रुमादिक करते,
हमको अपनी छाया-दान ॥
माता केवल बालकाल में,
निज गोदी में रखती है ।
हम अशक्त जब तलक तभी तक,
पालन - पोषण करती है ।
मातृ - भूमि करती है मेरा,
लालन सदा मृत्यु-पर्यन्त ।
जिसके दया - प्रवाहो का नहि,
होता सपने में भी अन्त ॥
मर जाने पर कण देहो के,
इसमें ही मिल जाते है ।
हिन्दू जलते, यवन, ईसाई,
दफन इसी में पाते है ॥
ऐसी मातृभूमि है मेरी,
स्वर्गलोक से भी प्यारी ।
जिसके पद कमलो पर मेरा,
तन - मन - धन सब बलिहारी ॥

प० मन्नन द्विवेदी

क्या हम सभी मानव नही, किंवा हमारे कर नही ?
रो भी उठें हम, तो बने क्या अन्य रत्नाकर नही ?

३

प्रत्येक जन प्रत्येक जन को, बन्धु अपना जान लो।
सुख-दुःख अपने बन्धुओ का आप अपना मान लो।
अनुदारता - दर्शक हमारे, दूर सब अविवेक हो।
जितने अधिक हो तन, भले है, हम हमारे एक हो।
आचार मे कुछ भेद हो, पर प्रेम हो व्यवहार में।
देखें हमें फिर कौन सुख मिलता नही ससार मे ?

४

बन कर अहो ! फिर कर्मयोगी वीर बड़भागी बनो।
परमार्थ के पीछे जगत् में स्वार्थ के त्यागी बनो।
होकर निराश कभी न बैठो, नित्य उद्योगी रहो।
सब देश-हितकर-कार्य में अन्योन्य सहयोगी रहो।
धर्मार्थ के भोगी रहो, बस कर्म के योगी रहो।
रोगी रहो, तो प्रेम रूपी रोग के रोगी रहो।

मैथिलीशरण गुप्त

नई कौमियत मुल्क में उग रही है,
युगो बाद फिर हिन्द माँ जग रही है,
खुमारी लिये जान को भग रही है,
दिलो में निराली लगन लग रही है,

शहीदो का फिर आज फेरा हुआ है,
उठो सोने वालो, सवेरा हुआ है।

अज्ञात कवि

उद्बोधन

(सगीत सौरभ)

अव तो उठो, क्या पड रहे हो व्यर्थ सोच विचार मे ?
सुख दूर, जीना भी कठिन है, श्रम विना ससार मे।
पृथ्वी, पवन, नभ, जल, अनल, सव लग रहे है काम मे।
फिर क्यो तुम्ही खोते समय, तो व्यर्थ के विश्राम में।
वीते हज़ारो वर्ष तुमको, नीद में सोते हुए।
वैठे रहोगे और कव तक भाग्य को रोते हुए ?

२

यदि हम किसी भी कार्य को, करते हुए असमर्थ हैं,
तो उस अखिलकर्त्ता पिता के, पुत्र ही हम व्यर्थ है।
अपनी प्रयोजन - पूर्ति क्या हम आप कर सकते नही ?
चालीस कोटि मनुष्य क्या निज ताप हर सकते नही ?

क्या हम सभी मानव नही, किंवा हमारे कर नही ?
रो भी उठें हम, तो बने क्या अन्य रत्नाकर नही ?

३

प्रत्येक जन प्रत्येक जन को, बन्धु अपना जान लो।
सुख-दुःख अपने बन्धुओं का आप अपना मान लो।
अनुदारता - दर्शक हमारे, दूर सब अविवेक हो।
जितने अधिक हो तन, भले हैं, हम हमारे एक हो।
आचार में कुछ भेद हो, पर प्रेम हो व्यवहार मे।
देखें हमे फिर कौन सुख मिलता नही ससार मे ?

४

बन कर अहो! फिर कर्मयोगी वीर बडभागी बनो।
परमार्थ के पीछे जगत् मे स्वार्थ के त्यागी बनो।
होकर निराश कभी न बैठो, नित्य उद्योगी रहो।
सब देश-हितकर-कार्य में अन्योन्य सहयोगी रहो।
धर्मार्थ के भोगी रहो, बस कर्म के योगी रहो।
रोगी रहो, तो प्रेम रूपी रोग के रोगी रहो।

मैथिलीशरण गुप्त

स्वतन्त्र देश के नवयुवक

(सगीत सौरभ)

१

शक्ति प्रदर्शन को जब कोई, गर्वित शत्रु प्रवल दल सजकर।
या बहु वैभव देख लोभ-वश, कोई निठुर दस्यु सीमा पर।
आकर - धन - जन पर पडता है, निर्भय रण दुदुभी वजाकर।
तब नवयुवक स्वतत्र देश के, क्या बैठे रहते हैं घर पर?

२

क्रुद्ध सिंह सम निकल प्रकट कर, अतुलित भुजवल विपम पराक्रम।
युद्ध-भूमि में वे वैरी का, दर्प दलन कर लेते है दम।
या स्वतन्त्रता की वेदी पर, कर देते है प्राण निछावर।
तब नवयुवक स्वतत्र देश के, क्या बैठे रहते है घर पर॥

३

या स्वदेश ही में जब कोई, स्वेच्छाचारी निपट निरकुश।
शासन राज-शक्ति से रक्षित, लपट लोलुप क्रूर कापुरुष।
निज कर्त्तव्य - विरुद्ध प्रजा पर, करता है अन्याय घोरतर।
तब नवयुवक स्वतत्र देश के, क्या बैठे रहते है घर पर?

४

व्यथित प्रजा के बीच वास कर, निर्भय भावो का प्रचार कर।
सत्य शक्ति के अवलबन से, शासन में निश्चित सुधार कर।
वे होते है हृदय - मच पर, या तो कारागृह के भीतर।
तब नवयुवक स्वतत्र देश के, क्या बैठे रहते है घर पर?

५

ाता है जब फैल देश में, कोई विषम रोग सक्रामक।
थवा ऊपर आ पड़ता है, जब भीषण दुर्भिक्ष अचानक।
ब जनता पुकार उठती है, त्राहि-त्राहि स्वर से अति कातर।
ब नवयुवक स्वतत्र देश के, क्या बैठे रहते है घर पर?

६

प्राणो का मोह छोडकर, निशि दिन घाम शीत सब सहकर।
र्म भाव मे प्रेरित होकर, भू-पर सोकर भूखे रह कर।
रम सुहृद बनकर समाज की, सेवा में रहते है तत्पर।
ब नवयुवक स्वतंत्र देश के, क्या बैठे रहते हैं घर पर?

पं० रामनरेश त्रिपाठी

विप्लव गान

(सगीत सौरभ)

कवि ! कुछ ऐसी तान सुनाओ , जिससे उथल पुथल मच जाए ,
एक हिलोर इधर से आए , एक हिलोर उधर से आए ।
प्राणो के लाले पड जाएँ , त्राहि त्राहि रव नभ में छाए ,
नाश और सत्यानाशो का , धुआँधार जग मे छा जाए ।।
वरसे आग, जलधि जल जाएँ , भस्मसात भूधर हो जाएँ ,
पाप-पुण्य, सद-असद भाव की , धूल उड उठे दाएँ-बाएँ ।
नभ का वक्षस्थल फट जाए , तारे टूक टक हो जाएँ ,
कवि ! कुछ ऐसी तान सुनाओ , जिससे उथल-पुथल मच जाए ।।

२

माता की छाती का , अमृतमय पय कालकूट हो जाए ,
आंखो का पानी सूखे , वे शोणित की घूंटें हो जाएँ ।
एक ओर कायरता काँपे , गतानुगति विगलित हो जाए ,
अधे, मूढ विचारो की वह , अचल शिला विचलित हो जाए ,
और दूसरी ओर कँपा , देनेवाला गर्जन उठ धाए ।
अन्तरिक्ष मे एक उसी , नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराए ,
कवि ! कुछ ऐसी तान सुनाओ , जिससे उथल-पुथल मच जाए ।।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

नया ससार

(मगीत सौरभ)

एक नया ममार

युवक वमायेंगे हिल-मिल कर , एक नया समार ,
तरुण वनायेंगे रच-रच कर , एक नया समार ।

१

तरुण क्रान्ति मन-मन मचलेगी ,
नगर-नगर, वन - वन उछलेगी ,
प्रान्त - प्रान्त, पुर - पुर विछलेगी ,
दुनिया को लपटो में लिपटा ,
हा - हा करती हुई चलेगी ।
यह मरघट की शान्ति जलेगी ,
लिपी - पुती मुख-कान्ति जलेगी ,
क्लेश जलेगा, क्लान्ति जलेगी ,
तरुण क्रान्ति की अग्नि-शिखा में
जग-जीवन की भ्रान्ति जलेगी ।
जग की राखो पर सुलगेगा एक नया मसार ॥

२

मामाजिक पापो के सिर पर
चढकर वोलेगा अव खतरा ,
वोलेगा पतितो - दलितो के
गरम लहू का कतरा - कतरा ।
होगे भस्म अग्नि में जलकर ,
धरम - करम औ पोथी - पत्रा ,

और पुतेगा व्यक्तिवाद के
चिकने चेहरे पर अलकतरा।
सड़ी - गली प्राचीन रूढ़ि के
भवन गिरेंगे, दुर्ग ढहेंगे,
युग-प्रवाह पर कटे वृक्ष-से
दुनिया-भर के ढोंग बहेंगे।
पतित-दलित मस्तक ऊँचा कर
संघर्षों की कथा कहेंगे,
और मनुज के लिए मनुज के,
द्वार खुले के खुले रहेंगे।

वह दिन आनेवाला होगा, धूम मचानेवाला होगा,
नींव हिलानेवाला होगा, जग में लानेवाला होगा।
नए रंग का, नए ढंग का, एक नया संसार॥

गोपालसिंह नेपाली

देश से आनेवाले बता

(सगीत सौरभ)

ओ देश से आनेवाले बता—

क्या अब भी शफक के सायो में,
दिन-रात के दामन मिलते है?
क्या अब भी चमन में वैसे ही,
खुशरग शिगूफे खिलते है?
बरसाती हवा की लहरो से,
भीगे हुए पौदे हिलते हैं?

ओ देश से आनेवाले बता।

२

ओ देश से आनेवाले बता—

शादाब-ओ शिगुफता फूलो से,
मामूर है गुलजार अब कि नही?
बाजार मे मालिन लाती है,
फूलो के गूंधे हार अब कि नही?
और शौक से टूटे पडते है,
नौखेज खरीदार अब कि नही?

ओ देश मे आनेवाले बता॥

३

ओ देश से आनेवाले बता—

क्या अब भी महकते मदिर में,
नाकूस की आवाज आती है?

क्या अब भी मुकद्दस मस्जिद पर,
मस्ताना अज़ाँ थर्राती है?
और शाम के रगी सायो पर,
इक अज़मत-सी छा जाती है?

ओ देश से आनेवाले बता।

४

ओ देश से आनेवाले बता—

क्या अब भी फिज़ा के दामन मे।
वरखा के समे लहराते है?
क्या अब भी किनारे दरिया पर,
तूफान के झोके आते है?
क्या अव भी अँधेरी रातो में,
मल्लाह तराने गाते है?

ओ देश से आनेवाले बता॥

५

ओ देश से आनेवाले वता—

क्या हमको वतन के वागो की,
मस्ताना फिज़ाएँ भूल गई?
वरखा की वहारें भूल गई,
सावन की घटाएँ भूल गई?
दरिया के किनारे भूल गए,
जगल की हवाएँ भूल गई?

ओ देश से आनेवाले वता।

६

ओ देश से आनेवाले बता—

क्या माची पै अब भी सावन में,
बरखा की बहारें छाती हैं?
मासूम घरों से भोर भये,
चक्की की सदाएँ आती हैं?
और याद में अपने मैके की,
बिछुड़ी हुई सखियाँ गाती हैं?

ओ देश से आनेवाले बता।

अख्तर शीरानी

कुसुम की चाह

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली! उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक॥

माखनलाल चतुर्वेदी

कौमी परवाने

(सगीत सौरभ)

भोले हरिणो के युगल नयन, उस दुष्ट बधिक से यो बोले ,
मेरे आँसू की सरिता में, तू अपने पापो को धो ले ।
तेरा इसमें कुछ दोष नही, हम तो स्वर के दीवाने है ,
है आजादी जिनकी लैला, हम वे मजनू मस्ताने है ।
मृदु तानो पर मरनेवाले, हम बीन बजाना क्या जानें ?

२

जब आए मस्त फकीरी में, दुनिया के बन्धन तोड दिए ,
दानवता की बलिवेदी पर, अरमानो से मुँह मोड लिए ।
फिर भी दुनिया की नज़रो में, हम कोई त्याग न कर पाए ,
निर्झर-सम निशिदिन झर-झर भी, हम खाली सिंधु न भर पाए ।
सीमित कारा में वैभव के, हम साज सजाना क्या जानें ?

३

हृदय-श्मशान में क्षण-प्रतिक्षण, अनगिनत चिताएँ धधक रही ,
जलते दिल के अगारो में, जग की आशाएँ चमक रही ।
देखो कैसा अद्भुत जादू, है उनके मौन निमन्त्रण में ,
सीना खोले बढते जाते, मदहोश स्वय आकर्षण मे ।
सकेतो पर मरनेवाले हम शोर मचाना क्या जानें ?

४

हम वे सागर गम्भीर नही, जो मर्यादा मे रहते है ,
हम तो तूफानी दरिया है, जो बाँध तोडकर बहते है ।
तरु होकर अपने कुसुमो को, हम कैसे स्वय मसल डालें ,
इन विद्रोही उद्गारो को, हम कैसे स्वय कुचल डालें ।
मानव हैं दानव के आगे, हम शीश झुकाना क्या जानें ?

गजराज सिंह वैद्य

चले चलो

(सगीत सौरभ)

है सामने खुला हुआ मैंदाँ चले चलो ,
वागे - मुराद है समर - अफशाँ चले चलो ,
दरिया हो वीच में कि वयावाँ, चले चलो ,
हिम्मत यह कह रही है खडी, हाँ, चले चलो ,
चलना ही मसलहत है, मेरी जाँ, चले चलो ।

(२)

आवो कि खोले अपने निशाँ नगो-नाम ने ,
वाँधी कमर है कसके हर इक शाद काम ने ,
क्यो इस तरह कमर को लगे थक के थामने ,
दीवारे - वाग वह नजर आती है सामने ,
चिल्ला रही है – हिम्मते मर्दां, चले चलो ।

(३)

हिम्मत के शहसवार जो घोडे उठायेंगे ,
दुश्मन फलक भी होंगे तो वह सर झुकायेंगे ,
तूफान वुलवुलो की तरह वैठ जायेंगे ,
नेकी के जोर उठके वदी को दवायेंगे ,
पीछे हटो न एक कदम, आगे वढे चलो ।

श्री आजाद

झाँसी वाली रानी

(सगीत सौरभ)

सिंहासन हिल उठे, राजवशो ने भृकुटी तानी थी ,
बूढे भारत में फिर से आई नई जवानी थी ,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी ,
दूर फिरगी को करने की सबने मन में ठानी थी ,

चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी ।
वुन्देले हरबोलो के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।
ख्व लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।

२

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलो में उजियाली छाई ,
किन्तु काल-गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई ,
तीर चलानेवाले कर में, उसे चूडियाँ कव भाई ,
रानी विधवा हुई हाय ! विधि को भी दया नही आई ,

नि सतान मरे राजा जी, रानी शोक - समानी थी ।
वुन्देले हरवोलो के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।
खूव लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।।

३

वुझा दीप झाँसी का तव डलहौजी मन में हरपाया ,
राज्य हडप करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया ,
फौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झण्डा फहराया ,
लावारिस का वारिस वनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया ,

अश्रुपूर्ण रानी ने देखा झाँसी हुई विरानी थी ।
वुन्देले हरवोलो के मुंह हमने सुनी कहानी थी ।
खूव लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।।

४

छिनी राजधानी दिल्ली की लखनऊ छीना बातों - बात ,
कैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात ,
उदयपुर, तंजौर, सतारा, करनाटक, की कौन बसात ,
जबकि सिन्ध,पंजाब,ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र निपात ,

बंगाले, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी ।
बुन्देले हरबोलो के मुंह हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥

५

कुटियो में थी विषम वेदना, महलो में आहत अपमान ,
वीर सैनिको के मन मे था अपने पुरखो का अभिमान ,
नाना धुन्धूपन्त पेशवा जुटा रहा था सब सामान ,
बहिन छबीली ने रणचण्डी का कर दिया प्रकट आह्वान ,

हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी ।
बुन्देले हरबोलो के मुंह हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥

६

इनकी गाथा छोड चले हम झाँसी के मैदानो में ,
जहाँ खडी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मैदानो में ,
लेफ्टिनेन्ट वोकर आ पहुँचा, आगे बढा जवानो में ,
रानी ने तलवार खीच ली, हुआ द्वन्द्व असमानो में ,

जख्मी होकर वोकर भागा, उसे अजब हैरानी थी ।
बुन्देले हरबोलो के मुंह हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥

७

रानी बढी, कालपी आई, कर सौ मील निरन्तर पार ,
घोडा थककर गिरा भूमि पर, गया स्वर्ग तत्काल सिधार ,
यमुना-तट पर अग्रेजो ने फिर खाई रानी से हार ,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार ,

अग्रेजो के मित्र सेंधिया ने छोडी रजधानी थी ।
बुन्देले हरबोलो के मुंह हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥

८

विजय मिली, पर अग्रेजो की फिर सेना घिर आई थी ,
अब जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुंह की खाई थी ,
काना और मन्दरा सखियाँ रानी के सग आई थी ,
युद्ध-क्षेत्र में उन दोनो ने भारी मार मचाई थी ,

पर पीछे ह्यू रोज आ गया, हाय घिरी अब रानी थी ।
बुन्देले हरबोलो के मुंह हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥

९

तो भी रानी मार-काटकर चलती बनी सैन्य के पार ,
किन्तु सामने नाला आया, था यह सकट विषम अपार ,
घोडा अडा, नया घोडा था, इतने में आ गये सवार ,
रानी एक, शत्रु बहुतेरे , होने लगे वार पर वार ,

घायल होकर घिरी सिहनी उसे वीर गति पानी थी ।
बुन्देले हरबोलो के मुंह हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ॥

१०

रानी गयी सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी ,
मिला तेज मे तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी ।
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नही अवतारी थी ,
हमको जीवित करने आई बन स्वतन्त्रता-नारी थी ,

दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी ।
बुन्देले हरबोलो के मुँह हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी ।।

सुभद्रा कुमारी चौहान

राष्ट्रीय गान

(सम्मेलन पत्रिका—आषाढ १९७८)

विमल भूमि जै,
सजल, सफल, सदल, सबल, भूमि जै । विमल भूमि जै ।।
प्रकृति-देवि अंक बसत, जल-निधि नित पद परसत ,
हिमगिरि वर मुकुट लसत, धवल भूमि जै ।। विमल०।।
जै स-भेद चारु वेद, जै पुरान-बन अ-भेद ,
दर्शन, स्मृति-युत अ-खेद, नवल भूमि जै ।। विमल० ।।
सिन्ध, गंग, यमुन सु-जल अगनित निन फलत सु-फल ,
सिक्ख, राजपूत सु-दल-सबल भूमि जै ।। विमल० ।।
सत्याग्रहि-जननि भूमि, धर्माग्रहि करनि भूमि ,
अगजग सुख भरनि भूमि, सरल भूमि जै ।। विमल० ।।
राम की पवित्र भूमि, श्याम की पवित्र भूमि ,
गौतम सु-चरित्र भूमि, सकल भूमि जै ।। विमल० ।।
जै असोक, अकबर कर, जै प्रताप, शिव, सुखधर ,
दरशन तव चहत अमर, अचल भूमि जै ।। विमल० ।।

बेचनशर्मा 'उग्र'

मातृभाषा-महत्त्व

(सम्मेलन पत्रिका—चैत्र, सवत् १९७७)

हिन्दी भारतवर्ष की, भाषा सर्व प्रधान ।
आरज कुल जातीय धन, जीवन प्रान समान ॥

निज भाषा बोलहु, लिखहु, पढहु गुनहु सब लोग ।
करहु सकल विषयन विषै निज भाषा उपयोग ॥

तिहुँ लोकन तें लाय नित नव्य नव्य उपहार ।
भारत-श्री चरननि धरहु, भरहु भव्य भडार ॥

हरि, हिन्दी अउ हिन्द कौ, जिन्हैं अटल अनुराग ।
सो सपूत भारत-सुअन सारथ जिअन, सुभाग ॥

मेरे हिय-सर में सदा विकसहु द्वै अरविन्द ।
हरि-पद-रति सुरभित सुभग, एक हिन्दी एक हिन्द ॥

श्रीधर पाठक

प्रण लो !

(आनन्द कादम्बिनी मासिक पत्रिका)

हे भाग्य हीन हत भारतवर्ष देश ?
हे हे विनष्ट धन धान्य समृद्धि लेश ।
प्राचीन वैभव विहीन मलीन वेश,
हा हा ! कहां तव गई गरिमा विशेष ।

२

जो ये प्रणम्य पहले तुम कीर्तिमान,
विज्ञान और बल-विक्रम के निधान ।
सम्पत्ति, शक्ति निज खोकर आज भारी,
हा हा ! हुए तुम वही सहसा भिखारी ॥

३

हा ! सभ्य भाव तुम ने जिनको सिखाया,
विद्या कलादि गुण से जिनको जिलाया ।
देखो, वही अब असभ्य तुम्हें बनाते,
तोभी कभी न कुछ भी तुम चित्त लाते ॥

४

दिव्यातिदिव्य तव रत्न, अहो, कहां है ?
शोभा-समूह पट-पुञ्ज, कहो कहां है ?
खोया सभी कुछ, न, हाय, तुम्हें हया है ।
हे देश ! शेष तुम में रह क्या गया है ॥

५

सूई, छुरी तक, निकृष्ट दियासलाई,
लेना सदैव तुम से फिरता पराई ।

निर्लज्ज ! सोच मन में कर क्या रहा है ?
क्यो व्यर्थ ही धन अपार लुटा रहा है ?

६

छाई जहाँ अति अपार दरिद्रता है,
प्राचीन - धान्य - धन का न कही पता है।
सुप्राप्य पेट भर नित्य जहाँ न दाना,
क्या चाहिये धन वहाँ पर यो लुटाना ?

७

हे देश ! सप्रण विदेशज वस्तु छोडो,
सम्वन्ध सर्व उनसे तुम शीघ्र तोडो।
मोडो तुरन्त उनसे मुँह आज से ही,
कल्याण जान अपना इस वात में ही ॥

माधवराव सप्रे

जापान के प्रति भारत भूमि

(वैश्योपकारक से)

हे धर्मपुत्र ! सुख कारक सुप्रजा के ।
आनन्द वर्जन ! वृहद्वल एशिया के ।
प्रख्यात - रूस - वल - दर्प - विनाशकारी ।
जापान ! हो, जय सदा रण में तुम्हारी ॥ १ ॥

मैंने सुनी न चिर से निज वीर - वार्ता ।
प्लेग प्रपीडित हुई सब भाँति आर्ता ।
दुर्भिक्ष रोग चय से अपनी गंवाई ।
सन्तान, किन्तु तुजमौ न करी लडाई ॥ २ ॥

तौभी त्वदीय जय दुन्दुभि नाद से मैं ।
आनन्दिता अब हुई सुत याद से मैं ।
शौद्धोदनी विदित जो गुरुदेव तेरा ।
था शान्तचित्त वह पावन पुत्र मेरा ॥ ३ ॥

माना कि शाक्य मत वैदिक से निराला ।
किन्तु प्रचण्ड-सुत-विग्रह मे सुमाता ।
भूले कभी न सुतको तनु जन्मदाता ॥ ४ ॥

तेरे नवोदित पराक्रम सूर्य से तो ।
प्राची समुज्वल हुई यह देश के सो ॥
यूरोप - शक्ति तिमिराहत हो रही है ।
मर्माहता सभय शक्ति रो रही है ॥ ५ ॥

रूसी पराभव असम्भव मानते थे ।
ऐसा बली न तुझको नर जानते थे ॥
तूने पराक्रम दिखा कहला लिया है ।
'वीर प्रसूति अब भी यह एशिया है" ॥ ६ ॥

सग्राम पोतगण को क्षण में डूबा के।
'यालू' नदी समर में सब को हटा के॥
आश्चर्यकारक सुदृश्य नया दिखाया।
सौभाग्य चक्र विधि ने फिर से घुमाया॥ ७ ॥

उद्योग और ममता वल से वढाया।
ऐसा प्रताप अवलम्व बृटीश पाया।
इग्लैंड मित्र जग में दबने न पाते।
कोई कभी यह सभी इतिहास गाते॥ ८ ॥

रूसाधिराज कर कम्पित लेखनी से।
तेरा चरित्र कहता अब है सभी से॥
'कोई कभी कर सका नहिं बीर जैसा।
जापान ने अव किया वरताव वैसा॥ ९ ॥

आनन्द - नृत्य - सुख - लिप्सु - कुदैव घेरे।
निद्रा निमग्न, जव थे सव वीर मेरे॥
थी अर्द्ध रात्रि जव की उसने चढाई।
मेरी, तरी सहित कीर्ति निजा डवाई॥ १० ॥

है नीति सगत नही यह रूस वानी।
दुर्नीति तत्पर वली, वह घोर मानी॥
मन्चूरिया वचन देकर भी दवाया।
ऐसा महत्व अपना उसने दिखाया॥ ११ ॥

चाहे कहे वह तुझे अव वात नाना।
हे वीर! नीति अपनी मत भूल जाना॥
हारे हुए, धरम की मवदे दुहाई।
जीते हुए मव करे वल की वडाई॥ १२ ॥

जो दीन है कव उसे वह है वचाता।
धर्मोपदेश उसका मुझको न भाता॥

स्वार्थान्ध हो जब करे उपदेश कोई।
माने न बात उसकी तब देश कोई॥ १३॥

कोई कथा जब सुनीति भरी उठावे।
चीनाभियान तब दुखद याद पावे॥
सीमन्ति कुल वधू सब रो रही थी।
हा! जार शक्ति, बधिरा तब हो रही थी॥ १४॥

ये नेत्र, किन्तु न दिया कुछ भी दिखाई।
मारी गई जब असंख्य सती लुगाई॥
पीताग - रक्त - सरिता - सुख से बहाई।
हा! हा!! दया न ममता नहि लाज आई॥ १५॥

बूढे, अनाथ, शरणागत को सताना।
कन्या अबोध शिशु कामिनी को रुलाना॥
जो वीरता ?— तब कहो निरलज्जता क्या ?
सर्वेश - चित्र -गति का कहिये पता क्या ? ॥ १६॥

तूं भी सुवीर! उस बार फटा हुआ था।
भाई विरुद्ध सब भाँति डटा हुआ था॥
क्रोधान्ध सैनिक हुए तब जर्मनी के।
काटे गए तनय, चीन अभागिनी के॥ १७॥

होता न जो कलह का घर एशिया में।
था कौन युद्ध करता फिर एशिया में ?
वैरी विदेशज यहाँ कब ही न आते।
आते तुरन्त मिटने रहने न पाते॥ १८॥

है शक्ति नाम जगमें सब मेल ही का।
सिद्धान्त सूत्र, यह किन्तु विशेष टीका॥
द्रव्य प्रभाव निज ने मिलके दिखाता।
गोधूम भी तुष बिना उगने न पाता॥ १९॥

इगलैंड फ्रान्स इसका गुण गा रहे हैं।
प्रत्यक्ष सग महिमा दिखला रहे हैं॥
तो भी नही समझते नर मूढता से।
ज्यो देखते न रवि को निज अन्धता से॥ २० ॥

जो हो चुका, अव उसे चित में न लाना।
प्यारे मह व अपना सवको दिखाना॥
भाई वही जगत में गणनीय होवैं।
मानों सहोदर विरुद्ध न बीज वोवैं॥ २१ ॥

नीतिज्ञ भ्रान्त कुछ वात नई सुनाते।
तेरे लिए समर अन्त वुरा वताते॥
रूसेश को वह सभी रणवीर जानैं।
चूहा तुझे पर उसे सव रीछ मानैं॥ २२ ॥

किन्तु प्रथा अव पुरातन जा चुकी है।
उत्साह शक्ति सव नूतन आ चुकी है॥
हे वत्स तोप अरि मार असख्य तेरी।
होगी प्रसिद्ध रणवीच लगैं न देरी॥ २३ ॥

राधाकृष्ण मिश्र, भिवानी

तिलक-स्वर्गारोहण

यह रात ! यह अँधेरा ! यह मौत-सा सन्नाटा ।
ठंडी हवा के झोंके हुँकार आफतों के ॥
घेरे खड़े दरिन्दे सब ओर सूँघते हैं ।
बादल उमड़ रहे हैं ओले बरसने वाले ॥
उलझे हुए कटीले इन झाड़ झंखड़ों में ।
हम हैं खड़े अकेले आगे न पीछे कोई ॥

वह राह का दिखैया दीपक लिये कहाँ है ?

चलना बहुत नहीं है खतरा बहुत है लेकिन ।
पीछे पलट न सकते हैं राह तंग आगे ॥
चूके जहाँ जरा बस पंजों में मौत के हैं ।
लाखों मुसीबतों का सब ओर सामना है ॥
ऐसे समय हमारी आँखों का वह उजाला ।
क्या हो गया बताओ ऐ साथियो ! बताओ ॥

जायें कहाँ, किधर, हमें कुछ भी न सूझता है !

हम डूबते हुओं का बस एक ही सहारा ।
आगे से हाय ! किसने छलकर हटा लिया है ॥
दामन में हम गरीबों के एक ही रतन था ।
धनियों सा हौसला था किस बेरहम ने लूटा ॥
दिल एक सह रहा था जुल्मों की चोट लाखों ।
उसको अरे अचानक ! किसने कुचल दिया है ॥

बुड्ढे की हाय लकड़ी किस निर्दयी ने छीनी !

फंदों में फँस के बिल्कुल बेकार बन चुके थे ।
हम रात दिन गरीबी की मार सह रहे थे ॥
आँधी के पत्ते ऐसे थे दर बदर भटकते ।
अपमान सह रहे थे फटकार सह रहे थे ॥

सब कष्ट झेलते थे थामे हुए कलेजा।
बस, देखकर तुम्हें हम हिम्मत न हारते थे॥

प्यारे तिलक कहाँ हो! प्यारे तिलक कहाँ हो!!

आँखें खुली तुम्हारी ऐसी सुबह में होगी।
जिसकी न शाम होगी सुख काम अंत होगा॥
ऐसी है रात हम को चारो तरफ से घेरे।
जिसके सुबह की कुछ भी दिखती नही सफेदी॥
सुनसान इस अँधेरे मे साथ सिर्फ दो है।
हरि नाम ओठ पर है सिर पर खडी बला है॥

ऐ लोक मान्य! ऐसी हालत में तुम ने छोडा!

आर्यों की सभ्यता के आदर्श रूप तुम थे।
भारत में एक ही थे तुम लोकमान्य नेता॥
निर्भीक सत्यवादी धर्मिष्ठ सयमी थे।
ज्योतिप गणित के ज्ञानी वेदो के पूर्ण ज्ञाता॥
थे राजनीति के तुम वक्ता सतर्क मेघा।
शकर के बाद जग को पडित मिले तुम्ही थे॥

भारत की आँख के तिल माथे के तुम तिलक थे॥

हरदम हमारे हित की तुम को लगी लगन थी।
सुख सोचते हमारा तुम जेल मे गये थे॥
सहधर्मिणी की सहकर दुख मे भरी जुदाई।
तुमने हमारे हित से क्षण भर भी मुँह न मोडा॥
भगवान के कथन का तुमने रहस्य खोला।
गीतारहस्य रचकर सदेश सब मिटाया॥

ससार में गजब का था बुद्धि बल तुम्हारा॥

मर्दानगी से हरदम हित के लिए हमारे।
तुमने मसीबतो को निर्भय गले लगाया॥

धन का न लोभ तुमको तन का न लोभ तुमको ।
मानापमान का भी कुछ भी न ख्याल तुमको ॥
हर एक पल दिया था जीवन का तुमने हमको ।
सर्वस्व तुम ने हम पर था कर दिया निछावर ॥

ऐ लोकमान्य ! क्या क्या सुधि हम करें तुम्हारी ॥

हमको स्वराज्य का हक इंग्लैंड से दिलाने ।
तुम थे गये विलायत, जाते अमेरिका भी ॥
पाते अपार इज्जत पर छोड़ लालसा यह ।
आये चले हमारा कल्याण सोचने को ॥
निस्वार्थ लोक-सेवा, यह देश प्रेम सच्चा ।
हा दैव ! अब कहाँ पर देगा हमें दिखाई ॥

रो रो पुकारते है, प्यारे तिलक कहां हो !

रोते ही रोते कितनी सदियाँ गुजार डाली ।
तदबीर की हजारो रोना न हमसे छूटा ॥
तुम स्वर्ग से थे आये ढाढस हमें बँधाने ।
यह कौन जानता था तुम भी रुला चलोगे ॥
जो लोकमान्य ! तुमको बदले में मौत देती ।
ले लेते हम खुशी से देकर के जान लाखो ॥

रोने से ऐसे मरना अपना हमें है प्यारा ॥

रोओ अभागे भारत ऐ बदनसीब रोओ ।
टूटी भुजा तुम्हारी गाधी जी आज रोओ ॥
खोकर के सच्चा साथी रोओ ऐ मालवीजी !
ऐ लाजपत अकेले अब फूट फूट रोओ ॥
रोओ ! ऐ मुल्क रोओ, जी भर के आज रोओ ।
हम मद भाग्य सारे बह जायें आँसुओ मे ॥

ऐसा रतन गँवा के चुप कौन रह सकेगा ॥

वही वीर है

(सगीत सौरभ)

वही वीर है वलिवेदी पर अपना शीश चढा दे जो,
तलवारो की छाया में भी निज सन्देश सुना दे जो।

यो तो इस दुनिया में आकर बहुत मनुज जीते-मरते,
अरे! पेट तो इस अवनी पर कीट पतगे भी भरते।
रोज़ देखते है हम सोनेवाले भी फलते न यहाँ,
कितनी ही लाशो पर रोनेवाले भी मिलते न यहाँ।

वही अमर है अपने मरन से पाषाण रुला दे जो,
वही वीर है वलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो,

देख दुखी को द्रवित हो गया जिसका उर तत्काल अरे,
सुनकर करुण पुकार उठे लोहू में गरम ज्वाल अरे।
जो पीडित की पीडा हर ले, उसे शूर हम कह सकते,
कौन वात हीरे-पन्नो की, कोहनूर हम कह सकते।

अपना जीवन-दीप वुझे, पर जीवन-दीप जला दे जो,
वही वीर है वलिवेदी पर अपना शीश चढा दे जो।

विकट विपत्ति के वाँध वेधकर, वढा चले मैदानो में,
सुभट सुमति ले सके नही, उठते आँधी-मैदानो मे।
कौन साथ है चलनेवाला, सोचे विना अकेला ही,
शत्रु-गलो को चीर गिरा दे, वन नरसिंह अकेला ही।

जौहर की ज्वाला से जग मे जीवन-ज्योति जगा दे जो,
वही वीर है वलिवेदी पर अपना शीश चढा दे जो।

पर्वत से सघर्ष मचाके, पार न जाये पानी क्या,
यदि तूफानी ज़ोर नही, तो उठती हुई जवानी क्या।

वह जवान भी क्या जिसमें उठते सागर के ज्वार नहीं,
अंगारों पर जो चलने को रहता है तैयार नहीं।
वही धीर है मर मिटने में पहला नाम लिखा दे जो,
वही वीर है बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो।

जिसकी यश-उजियारी से शुभ पथ का दर्शन सभी करें,
और जगत् के नर-नारी घी के समाधि पर दीप धरें।
भारत-भू के कण कण में इतिहास मिले-नर-पुंगव का,
गीत निराला गूँज उठे गिरि शिखरों में नव विप्लव का।
आज विश्व को कर्मयोग का पावन पाठ पढ़ा दे जो,
वही वीर है बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ा दे जो।

हरिनन्दन मिश्र

गणतन्त्र स्वागत

(सगीत सौरभ)

सम्राटो की सत्ता काँपी, भूपो के सिंहासन डोले।
गणतन्त्र तुम्हारे आते ही, जन-जन जागे, कण-कण बोले।
गणतन्त्र तुम्हारे स्वागत में, प्राणो के पुष्प विछाये है,
आज़ादी के परवानो ने, हँस-हँस कर शीश चढाए है।

२

आओ-आओ निज जननी को, जुग-जुग गणतत्र निहाल करो,
फिर गौरवशीला माता का, भू-तल पर उन्नत भाल करो।
डग-डग पर डगमग करने को, पग-पग पर पडे प्रलोभन है,
पथ-भ्रष्ट कही मत हो जाना, मोहक, रमणी, धरणी धन है।

३

गण-गण में गुण-गण विकसित हो, कण-कण से कायरता भागे,
मम-मन में भद्रभाव उमगे, जन-जन मे नैतिकता जागे।
समता, स्वतन्त्रता वन्धु भाव से गूंज उठे पृथिवी सारी,
यह लोक "सत्य सुन्दर" हो, मानवता मगलकारी।

४

रण रोप-रोप नरमेध न हो, सुख-शान्ति, प्रेममय प्राणी हो,
वसुधा कुटुम्ब-सम वन जाए, मानव गति-मति कल्याणी हो।
जन-सेवा नित निष्काम करे, सहयोग-नीति अपनाएँ सव,
सतयुग-सा युग फिर आ जाए, घर-घर को स्वर्ग वनाएँ सव।

हरिशकर शर्मा "कविरत्न"

पथिक से

(संगीत सौरभ)

पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

जीवन के कुसुमित उपवन में गुंजित मधुमय कण-कण होगा।
शैशव के कुछ सपने होंगे मदमाता-सा यौवन होगा।
उस यौवन की उच्छृंखलता में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

पथ में काँटे तो होंगे ही, दूर्वादल, सरिता सर होंगे,
सुन्दर गिरि, सर, वापी होंगी, सुन्दर-सुन्दर निर्झर होंगे।
सुन्दरता की मृगतृष्णा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

यौवन के अल्हड़ वेगों में बनता-मिटता छिन छिन होगा,
माधुर्य सरसता देख-देख भूखा प्यासा तन-मन होगा।
क्षण भर की क्षुधा - पिपासा में
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

जब कठिन कर्म-पगडंडी पर राही का मन उन्मुख होगा,
जब सब सपने मिट जायेंगे कर्तव्य-मार्ग सन्मुख होगा।
तब अपनी प्रथम विफलता में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

अपने भी विमुख पराए बन आँखों के सम्मुख आयेंगे,
पग-पग पर घोर निराशा के काले बादल छा जायेंगे।
तब अपने एकाकीपन में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

जब चिर-संचित आकांक्षायें पल भर में ही ढह जायेंगी,
जब कहने सुनने को केवल स्मृतियाँ बाकी रह जायेंगी।

विचलित हो उन आघातो में
पथ भूल न जाना पथिक कही।

हाहाकारो से आवेष्टित तेरा मेरा जीवन होगा,
होंगे विलीन यह मादक स्वर मानवता का क्रन्दन होगा।

विस्मित हो उन चीत्कारो में,
पथ भूल न जाना पथिक कही।

रणभेरी सुन कह "विदा" जब सैनिक पुलक रहे होगे,
हाथो में कुकुम थाल लिये कुछ जल-कण ढुलक रहे होगे।

कर्त्तव्य प्रणय की उलझन में,
पथ भूल न जाना पथिक कही।

वेदी पर वैठा महाकाल जब नर-वलि चढा रहा होगा,
वलिदानी अपने ही कर से निज मस्तक बढा रहा होगा।

तव उस बलिदान - प्रतिष्ठा में,
पथ भूल न जाना पथिक कही।

कुछ मस्तक कम पडते होगे जव महाकाल की माला में,
माँ माग रही होगी आहुति जव स्वतन्त्रता की ज्वाला में।

पलभर भी पड असमजस में,
पथ भूल न जाना पथिक कही।

शिवमंगल सिह सुमन

स्वतन्त्रता के दीवाने

(सगीत सौरभ)

जब रण करने को निकलेंगे स्वतन्त्रता के दीवाने।
धरा धँसेगी प्रलय मचेगी, व्योम लगेगा थर्राने।

बहन कहेगी जाओ भाई, कीर्ति-कौमुदी छटकाना।
पुत्र कहेगा पिता शत्रु का, झण्डा छीन मुझे लाना।
स्वाभिमानिनी माँ कह देगी, लाज दूध की रख आना।
और कहेगी पत्नी प्रियतम, विजयी हो स्वागत पाना।
सब पुरवासी लोग हर्ष से, फूल लगेंगे वर्षाने।
जब रण करने को निकलेंगे, स्वतन्त्रता के दीवाने॥ १ ॥

उधर गर्वपूरण रिपुदल का, कटक अपार खड़ा होगा।
इधर स्वयं सेवक दल कर में, झण्डा लिए अड़ा होगा।
उन्हें तोप-तलवार-तीर का, मन में गर्व बड़ा होगा।
इधर अहिंसा का उर में भी, जोश नया उमड़ा होगा।
उत्साही कवियों की कविता, शौर्य लगेगी वर्षाने।
जब रण करने को निकलेंगे, स्वतन्त्रता के दीवाने॥ २ ॥

गोदी सूनी हो जावेंगी, कितनी ही माताओं की।
और चूड़ियाँ भी उतरेंगी, कितनी ही अबलाओं की।
घिर आयेंगी शिशुओं पर भी, घोर घटा विपदाओं की।
जब कि चलेगी भारत भू पर, वह आंधी अन्यायों की।
ऐसा आर्तनाद होगा वह, दृग जावेंगे दहलाने।
जब रण करने को निकलेंगे, स्वतन्त्रता के दीवाने॥ ३ ॥

अज्ञात कवि